

—प्रकाशक—

महावीर जयन्ति उत्सव समिति
म तु क्लाय मार्केट,
हदौर

—संपादक—

श्री नेमीचन्द जैन श्री अजितप्रसाद

प्रबंध संपादक

श्री मिश्रानाल सोना

अन्तर्दशन

१	रहिद कस्ताओ हवे समणो		
२	भमण तीर-दाज हाता है—		
३	हम तो स्वाधीन विचरते हैं ! (कविता)	भी बोरेद्रकुमार जैन	१
४	महावीर ने कहा—	स्व वाडीलाल मोतीलाल शाह	२
५	भमण अमिताभ (कहानी)	भी शिखरचन्द जैन	१५
६	धम की देन—	भी माखनलालजी चतुर्वेदी	२५
७	जग वृद्धन (कविता)	भी सागरचन्द जैन मौला	३
८	भमण-संस्कृति का राष्ट्रीय महत्व	भी शिखरचन्द जैन	३१
९	भगवान महावीर की देन	भी नाथूलाल जैन	३४
१०	मुक्तिपत्र (कहानी)	भी स्वरूपकुमार गागेय	६७
११	मनुष्य को अहिंसा (पर सुखीकरण) धर्म की भाव एकता क्यों ?		
		श्री दीलतराम जैन 'मित्र'	४६
१२	नाम विक्रमि मात्र है	भी अक्षयकुमार जैन	४६
१३	संस्कृति का जीना मरना नहीं होता	श्री नेमाचन्द जैन	५१
१४	धर्म और पंथ	भी प सुललाल संवदी	५२
१५	दे मन तेरी को कुटेव (कविता)	स्व पं दीलतराम जी	५७
१६	गति का गीत (कविता)	भी स्वरूपकुमार गागेय	५८
१७	सरय कैसे खोजा जाय ?	महात्मा भगवानदान	५६
१८	श्री मानवता के कर्णधार (कविता)	श्री प्रकाश उष्यज	६५
१९	ससकी चाद (कविता)	भी कु जदिहारीलाल पाण्डेय	६६
२०	विगम्बर	भी जैनेद्रकुमार	६७
२१	जिनके चरणोंपर राष्ट्र चलता है		
२२	सम्पादकीय	शुभी डा तारादधी जैन नलिनी	७३
			७६



रहित कसाथो हवे समणो

समत्व—

समसत्त्वधुवग्गो समसुहदुक्खो पससण्दिस्समो ।
समलोत्तुक्कचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥

—प्रवचनसार ३११ ।

शुभ और बधु सुख और दुःख, प्रशंसा और निंदा मित्र और शत्रु तथा ज्ञान और मरण में भ्रमण समतुल्य होता है ।

विरक्ति—

इहलोगणिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।
जुत्ताहारविहारो ररिद्धकसाथो हवे समणो ॥

—प्रवचनसार ३१६ ।

भ्रमण इहलौकिक विषयतृष्णा से विरक्त और आरलौकिक विषयाकांक्षाओं से रहित होता है । इसका आनन्द अतुल्य होता है । यह कषाय वासनाओं से निमुक्त रहता है ।



व्याक्ति-स्वातन्त्र्य—

अरणदवियेण अरणदवियस्स णो कीरुंहे गुणुप्पादो ।
तम्हा दु सवोक्खवा उपसंज्जे सहावेण ॥

—समवसार गा० ३२५ ।

कोई भी द्रव्य अर्थात् चेतन या अचेतन व्यक्ति किसी अन्य द्रव्य का गुणोत्पाद नहीं कर सकता । इसलिए सभी द्रव्य अपनी अपना उपादान योग्यता के अनुसार उत्पन्न होते हैं और परिणाम करते हैं ।

परकर्तृत्व का तिरोध—

जो चम्हि गुणो दब्बे सो अरण दण संपमदि दब्बे
सो अण्णमसक्त्तो फह त परिणामए दब्बं ॥

चेतन या अचेतन जिस द्रव्य के जो गुण और धर्म हैं वे उसी में उत्पन्न हैं अन्य द्रव्य में संक्रान्त नहीं होते । जब एक द्रव्य का गुण और धर्म अन्य द्रव्य में संक्रान्त नहीं होते तो फिर वह अन्य द्रव्य का परिणाम करानेवाला कैसे हो सकता है ।

धमण तीरन्दाज होता है

(बौद्ध साहित्य में "मिलिन्द प्रश्न" का स्थान बहुत ऊँचा है। वेकिंग के ग्रीक राजाओं में 'मिनाण्डर' बड़ा प्रतापी और ज्ञान-वारिधि था। स्थिति नागमन और इसका बीच हुए तक पूर्ण प्रश्नोत्तर इतने सर्वाङ्गीण और पुराण हैं। उनमें बढ़ जाने पर धमण मान्यताओं की स्पष्ट रूप देखा सम्मुख आ जाती है। धमण का ज्ञान कितना अतल, पूरा, अधिष्ठित और मनोवैज्ञानिक होता था इसका अनुमान हम नीचे दिया जा रहा उद्देश्य से लगा सकते हैं। पशु-पक्षी तथा मानव आदिम प्रवृत्तियों का जिनना पर्यवेक्षण उनका होता था और जावन की गहरी समस्याओं को चिन्तन, मनन और विचिनवान आउत्ति द्वारा दृश्यगम कराने जो मनोवृत्ति उनमें था वह आज के अति समाज से उन्नत गइ है। संप्रदिक् पर्यवेक्षण और उसका व्यावहारिक जीवन में प्रयोग 'मिलिन्द प्रश्नों' का विशेषता है।)

'भक्त नागसेन ! आप जा कहते हैं कि धमण में तीरन्दाज के चार गुण हैं चाहे वे चार गुण कौनसे हैं ?

पान के तूणीर खाली नहीं होत—

१ महाराज ! तीरन्दाज तीर चलाने के लिये अपने पैरों को जमीन पर ठीक से जमाता है, घुटनों को सीधा करता है। तूणीर को कमर से आड़ देकर स्थिर रखता है। सारे शरीर को रोक लेता है, एक हाथ में धनुष पकड़ता और दूसरे से तीर चढ़ा लेता है, मुठ्ठी को कसकर दबाता है, अंगुलिमा को सँभल लेता है, निशाना सीधा करता है और इतमिमान करता है कि मार ही दूग वैसे ही योग साधन करने वाला योगी शील की पृथ्वी पर वीथ के पैरों को जमा दे समाशीलता और दया को साधा करता है समय में चित्त को आड़ देना धमणियमा से अपने का रोक रखता है, इच्छा और उत्प्रेक्षा को दबा देना मनन करने के अभ्यास से चित्त को लगा लेता है। उत्साह को सीधे लेता है, दरवाजा को बन्द कर लेता है खयाल को जमा लेता है, और विश्वास करता



कि ज्ञान के नीर से क्लेशों को बेष ही दूगा। भ्रमण तीर-दात्र का यही पहला गुण होना चाहिये।

वह स्मृति प्रस्थान का 'आलक' रहता है—

२ महाराज। फिर, तीर-दात्र अपने पास एक आलक रखता है, जिससे टेढ़े-बुढ़े तीर का सीधा कर लेता है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को अपने टेढ़े-बुढ़े चित्त को सीधा करने के लिये स्मृति प्रस्थान का आलक भाष्य में बराबर रखना चाहिये। भ्रमण धनुर्विद का यही दूसरा गुण होना चाहिये।

लक्ष्य पर एकाग्र दृष्टि रहता है—

३ महाराज। तीर-दात्र लक्ष्य बनाकर उसी पर अभ्यास करता है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु (भ्रमण) का अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास करना चाहिये। महाराज। शरीर पर मनन करने का अभ्यास कैसे करना चाहिये। "यह शरीर अनित्य है दुःख है अनात्म है, रोग का घर है, कष्ट है, पीडा जनक है, पापी है, बाधा वाला है, अपना बनकर रहने वाला नहीं है, मर जाने वाला है, विघ्नांस मरा है इसमें बड़े बड़े उपद्रव होते हैं, इसमें भय ही भय है मनहूष है, चंचल है ज्वलभयुर है, अभ्रुव है, असहाय है, अशरण है, निःसार है शून्य है, दीर्घो वाला है, असार है, मारने वाला है, सस्कार है, उत्पन्न होने वाला है, वृद्धा होने वाला है, बीमार पड़ने वाला है, मर जाने वाला है, शोक देने वाला है, परिदेव वाला है, केवल परेशानी देने वाला है, क्लेश देने वाला है,—" ऐसा ही मनन करना चाहिये। महाराज। योग साधन करने वाले भिक्षु (भ्रमण) को इसी तरह मनन करने का अभ्यास करना चाहिये। तीर-दात्र का यही तीसरा गुण होना चाहिये।

अथर अभ्यासी होता है—

४ महाराज। तीर-दात्र साम और मुबह अभ्यास करता है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को सांक्र मुबह ध्यान का अभ्यास करना चाहिये; तीर-दात्र का यही चौथा गुण होना चाहिये।

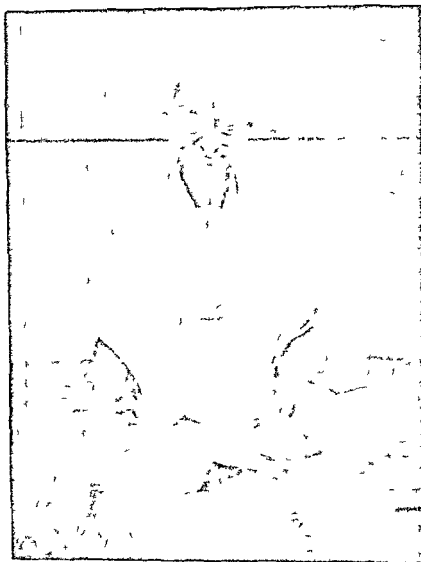
धमण के गुण और चिन्ह—

- (१) वे अरय्य, वृक्ष-मूल, तथा शून्यागार इन तीन भेद भूमियों में वास करते हैं,
- (२) वे सभी अच्छी बातों में आगे रहते हैं
- (३) अच्छे नियमों में प्रतिष्ठित रहते हैं,
- (४) सदाचारी होते हैं,
- (५) शान्त और दात होकर विहार करते हैं,
- (७) संयमी होते हैं,
- (८) शांति (दम) से युक्त होते हैं,
- (९) सुरत होते हैं
- (१०) श्रेष्ठ आचार विचार वाले होते हैं
- (११) ऊँची और पवित्र इच्छाओं वाले होते हैं,
- (१२) विवेक सम्पन्न होते हैं,
- (१३) पाप कामों में लज्जा और मय रखने वाले होते हैं,
- (१४) वीर्यवान् होते हैं,
- (१५) अप्रमादी होते हैं,
- (१६) शिवापदों की आहुति करने में सदैव उत्साहशील रहते हैं,
- (१७) धर्म को जानने के लिये सदा उत्सुक रहते हैं,
- (१८) शीलों के पालन करने में तत्पर रहते हैं,
- (१९) दुष्णा पर विजय पाने वाले होते हैं और
- (२०) शिवापदों को पूरा करते हैं—ये उनके अपने बीस गुण होते हैं।

—'मिलिन्द प्रश्न' से



विरक्ति के पथ पर—



आत्म चिंतन म लीन
सर मेठ हुमच दनी

हम तो स्वाधीन विचरते हैं !

श्री धीरेन्द्रकुमार जैन

(घर्म के कृत्रिम विधि विधान की लौक पीटन वाले यहूदी पाका पुरोहितोंने महात्मा ईसाकी मुक्त चर्या पर जब श्रापति उठाई, और प्रहारकी घमकियाँ दीं थीं तब उनने अमर्यों क निर्वाप विहार की जो तेजस्वी घोषणा की उसीके माव को प्रस्तुत गीत में बौंधा गया है । यह शैलक के अग्रकाणित-गीति प्रबंध 'ज्योति पुत्र' का एक अंश है ।— ले०)

हम तो स्वाधीन विचरते हैं !
हम नहीं किसी के फहने से,
चलते हैं या कि ठहरते हैं ।
हम जीवों के कल्याण हेतु ही,
इस धरती पर फिरते हैं ॥
हम जहाँ रहें, भव भीते जनोंके,
पाप ताप सब हरते हैं ।
हमको न श्रे, भय की बाधा,
हम तो स्वाधीन विचरते हैं ?
इस धरती के फानून नहीं,
हम मस्तों की पय-मर्यादा ।
क्या कभी मनुज के शासन ने,
आजाद हुआओं को बौंधा ?
जीवन प्रवाह हम निर्बंधन,
उमुक्त समंदर बहते हैं ।
हमको न श्रे, कोई बाधन,
हम तो स्वाधीन विचरते हैं ।
हम बाल पुरुष के राजपुत्र,
हैं यही हमारा पय नेता ।
जब वह पड़ियाज बजाता है,
तब अपना कूच कदम होता ।
हम अरे, मौत की रातों में,
चिर जीवन दीपक जलते हैं ।
बाँडदान हमारी लीला है ।

धमो तक लबर भी नहीं। और दया, यह भी भगवान् के माथ ही भर गई। हा 'हा' 'हा' महावीरने लिन लिपा कर कहा।

धर्मों के कारण तू नीचे को लिन रहा है, तो क्यों नहीं उन्हें फेंक देता? एतद्भय (काम क्रोधादि शत्रु को जीतने का उच्च भूमिका) गिरि शिखर की त्वस्य हवा चाहता है तो शरीर पर धर क्यों लाद रहे हैं? यह इसी क्यों करा रहा है? अपनी मूर्खता और अशक्ति से विह्वल बनाए गए शरीर को सुख पता को उठने के लिए और दुनियाँ को घोषा देने के लिए दुनियावी विद्वानों ने धर बनाए और स्वामाविक गता को पाप, अनानि और जंगलीन बनाया। परतू तो इस समय हवा को तरह प्राकृतिक गता, शरभरहित और जंगली बनना चाहता है तब धर की क्या जरूरत? दुनियावी विद्वानों के इस जाल को दुनिया की ही तरफ फेंक दें" महावीर ने कहा।

'और गौतम, पर्वत की टेकरियों पर बिहार करने व से तेरे जैसे सिंह को धर्मों का जाल। यह कहना ही असंभव है। दुनियावादियों के लिए 'नीति' 'अनीति' के धर्मों के जाल रहे गए हैं। पर सिंहों के लिए तो प्राकृतिक नग्नदृष्टि ही है। सिंह और धीरों के लिए कोई शरम को बात नहीं है, शरम टाक शब्दकोश में हा नहीं है, उनके पास दिग्गमे लायक दुष्ट नहीं। शरम और भय इनको को

दूरी तरह भूल सकता हो वही शत्रु जय गिरिराज पर रह सकता है और वृत्त की आरोग्य और शक्तिदायिनी हवाका उपभोग कर सकता है। देववल्लभ नग होने और नग्न रहने को शरम को इन शरम भरे पक्षों में ही लपेटकर फेंक दे इस शरमभरी दुनिया पर" ये फिर बोले-

'और देववल्लभ, शत्रु जय गिरि राजपर चढ़ते समय 'कही गिरन जाऊँ' इस मय के मय हो तू हाथ पकड़ने की आशा रखता है। तू इन आशा और भय को यहाँ की खुदनुर्मा हवा में उड़ा दे। और आशा और भय के चक्र से परे रहनेवाला न हा या बालक बन जा, बालक।'

"गुरुदेव, जैसी आश की आशा' गौतम ने कहा। पर गुरु के आलम्बन का त्याग कैसे किया जाय? इसी विचार में गौतम का मन उलझ गया।

"गौतम, मैं कभी आशा नहीं करता। 'आशा, प्रार्थना और हाथ हाथ करना' ये तीनों बनाए मुझे दूर हां रहती हैं। ये मुझमें डरती हैं। ये तीनों बलाएँ दुनियावी इश्वरों के पैर में घुस गई हैं" यह गौतम से कहकर महावीर शत्रु उग्रय की एक अत्यन्त दुर्गम शिखर पर नग्न निभय रूप में एक पैरसे खड़े हुए लिनलिनाकर अट्टहास करने लगे।

गौतम महावीर के इन गम्भीर उद्गारों का मर्म नहीं समके। वे उलझे

पक्का गए। महावीर को शाक्यद्वि
 गौतम क मनोभावों की बराबर देख
 रही थी पर उसकी शान्त्योति इतनी
 उत्तम थी कि उसमें दया की शक्तिलता
 को अवकाश हो नहीं सिला। वह सागर
 जैसे गम्भीर और शिखर जैसे उच्च
 मन्थ पर कटिन हृदय से गौतम के प्रति
 निर जोर से खिलखिलाए और बोले-

“देववल्लभ, तू मेरा हाथ माँगता
 है। हाँ हाँ हाँ, तू मेरा हाथ
 माँगता है। पर मैं स्त्री नहीं हूँ। हा
 हाँ । तू मुझे स्त्री बनाता चाहता है।
 यही तेरी शुभमति है? सुन, मैं तुझे कहे
 देता हूँ कि स्त्री हाथ तो देती है पर
 बदले में हृदय ल खती है। हृदय जाते
 ही हिम्मत ठसी के साथ खली जाती है।
 इसीलिए स्त्रियाँ बड़ा हिम्मतवाली हैं।

आज पुरुष रोता हुआ, दीन, परके
 हाथ का सहारा चाहने वाला, स्वबल
 और स्वमान का भान न रखनेवाला
 अनुदार बन गया है। देववल्लभ, यदि
 मुझमें परका कुछ भी करने की शक्ति
 होती तो मैं यह चाहता कि आज के
 पुरुष स्त्री बन जाते। इससे उनमें कुछ
 विशय मनुष्यता प्रकट होती। और
 गौतम, अपने तो इस समय मनुष्यता ही
 नहीं, किन्तु देवत्व, परमदेवत्व और सिद्ध
 त्व के प्रकट करने के लिए स्रुजय
 निरिराज पर निकल पड़े हैं, तू क्या
 यह भूल गया” महावीर ने

गौतम, आज ही तिसी
 की बजादार नहीं है और पुर
 के आज सबका लक्ष्य सिद्ध
 विनाश ही रहा है, और कुछ
 मात्र एश आराम ही। और मन
 मुक्ति के स्थान पर देश आराम
 बैठा रहता है। आराम और हुन
 प्राप्तव्य मानकर 'दुनियावी शक्तों
 शेष दुनियाँ के मनुष्यों के निर
 मनीति के बचप और पुन पर
 साँझों : ३६ ३,२५ १९५०
 गौरव आदि के बिना हृद कट
 तरह जिदगी बिताना सिक्का। स
 वल्लभ, तू भी इन सब
 आह्वयों में उलझ रहा है,
 हाथ का सहारा माँगता है। पर
 देववल्लभ, समझ, ३१ । ५
 धर्म के आह्वयों की छोड़ने के ल
 नून धर्म का प्रतिबोध देने के लि
 और तवीन लोगों को भड़काकर उ
 से कुछ हिम्मत वाले व्यक्तियों का निर्ण
 करने के लिए ही मैं अगती चलो
 स्वावलम्बी शिरार से कुछ नीचे उ
 आया हूँ। प्रत्येक वस्तु को नवीन रूप
 द रहा हूँ, नया नाम और नया रूप
 रहा हूँ। इसीसे पुराने मूल्य के ठेकेदार
 का आशय हिल रहा है। वे कोषित
 मुझपर प्रहार करने में भी नहीं चूको
 पर इससे क्या? प्रत्येक प्रहार मुझे
 आनन्द का नया पाठ देता है। और
 इसीलिए मैं आर्यों की अपेक्षा अनर्प

की समर्प प्रेरणा नहीं दे रहे हैं। गौतम
 मीने यह पहिले ही कहा था कि इस
 दुनिया में से 'प्रभु' मर गया
 है, और अब फिर यह कहना है कि—
 इस समय प्रभु तुझमें 'श्रवतार' लेना
 चाहता है। तू इसके लिए तैयार होजा।

इसके बाद महापीरने नेत्र खोले
 और पूर्ण तेजस्विता से कहा— गौतम,
 देववल्लभ, भाषी भगवान्, लका हो
 जा, और पहाड़पर चढ़ने लगे, कूदता
 हुआ, पलाग मारता हुआ और क्षीण
 पुरुषोंकी हँसी करता हुआ और टेकरि
 योंको थपड़े देता हुआ ऊँचे-ऊँचे और
 ऊँचे चढ़ने लगा।

इसी समय गौतमके शरीर में
 बिजली की शक्ति सी आई। उसने
 माया ऊँचा किया और वह आगे
 बढ़ने लगा। शरीर पर के सारे बल
 उसने हवा में फेंक दिए।

एक, दो, तीन टेकरियाँ पार की
 होंगी कि एकपक्ष गौतम को सिंहगर्जना
 सुनाई दी।

गौतम वहीं रुक गया और उसके
 मुँह से सद्बज में निकल पड़ा—“प्रभो,
 सहाय करो, रक्षा करो।”

“ओ भय के धातावरणको चाहने
 वाली दुनियाकी मछली, तू दिन रात
 भय भयसे ही तड़फटाती रहती है।

यदि मैंने क्रोधादि सभी दुर्गुणों
 पर जय न किया होता तो तुम
 अभीम क्रोध आता। इस तरह भ

जिन्दगी बिनाने की अपेक्षा सिंह के
 मुख में जीतेजी घुसने का साहस क्या
 'उन्च पानदानी' नहीं है। पेट के बल
 चलकर गँगरंगकर पथ धर्य जावन
 लम्बा करने की अपेक्षा कूदना नाचना
 हँसना उड़ना और सर्प कटो में
 क्या अधिक मजा नहीं है। दूसरे की
 मदद, रक्षा और दया से जीवित रहने
 की अपेक्षा भय की मरदानगी की मेंड
 चढ़ाने में क्या अधिक स्वास्थ्य सुख
 नहीं है ?

ऐ नाजुक घदन की गुलामी में गले
 तक कैमे हुए मनुष्य, इस भय को
 तूने ही उत्तन्न किया है। तू सच बता,
 क्या इसी तरह तूने दुनिया में भय'
 की सृष्टि नहीं की है ? या सिंह तुझे
 डराता है, पर तू चाहे जितने सिंहीं
 के कान पकड़ सकता है' इस सत्य को
 तू क्यों भूल गया है ?” इस प्रकार
 महावीर ने कहा।

“देववल्लभ, मैं तुझे एक धरती
 भीती सुनाता हूँ। सुन,

गौतम, मैं एक दिन इसा शिवर
 पर बैठा हुआ अनन्त आकाश में खेल
 रहा था। लगे हूते ध्यानदशा कहते हैं।
 पर इस दशा में जो अनेक युद्ध चलते
 हैं, और समुद्र स्नान, स्यस्नान तथा
 भयकर तूफान चलते हैं, उनकी राबर
 कुछ ही विवेकियों को होती है।

कुछ गायों को लेकर

। मुझे छाधु

समझकर बोला—बाधाजी, मैं जब तक
बादल आता हू तब तक इन गायों को
समहालता। यह कहकर वह चला गया।
गौतम, समझा ? ये गायें और ग्वाला
दया हैं ! ये मनुष्य गायें और इनके
दिल पर सत्ता चलाते वाले राजा और
धर्म के ठेकेदार गुरु ये ग्वाल हैं। तू
समझा।

उस ग्वाले ने विचारा होगा कि
मैं भी एक साधु होने से इन गायों को
बाध रखने की कला जानता होऊँगा।
और इसीलिये यह मुझे गायों का सौंप
कर चल दिया।

पर म तो टेकरी पर बैठा हुआ
बादलों के उस पार उड़ रहा था, यहीं
बूढ़ रहा था। मुझे उन गायों की क्या
परवाह थी !

आकाश से कामधेनु लाने की शक्ति
मुझ में थी, पर मैं बेगरज, मुझे इन
गायों की क्या परवाह ?

जिस तरह मुझे गायों का ग्वाला
या मालिक बनने की इच्छा नहीं थी,
उसी तरह लकड़ी से मार मारकर
उनका दूध छीनने वाले उन्हें सदा बांध
रखने वाले ग्वाले से उन गायों को
छुड़ाने की भी इच्छा नहीं थी। कारण,
मैं प्रकृति के नियम और उसकी
प्रक्रिया को बराबर जानता था। मुझे
किसी भी दशा में खेद नहीं होता था।
मैं लागणी माध से परे था। मेरी प्रकृत
शक्तियाँ किसी को तृप्ता मेटने में सहा
यक हो जाँय, यह दूसरी बात है, पर

मेरा स्वयं किसी को खेद पहुंचाने या
किसी पर दया करने का स्वभाव
नहीं था।

इसीलिये मैंने उन गायों की पर
वाह न की और अपने प्यान में मस्त
रहा। मुझे इस तरह लापरवाह देख
कर गायें स्वयं किसी गाँव के रास्ते
चल गईं।

“गौतम ये विचारी गायें कन्ना
चित्त यह समझनी होंगी कि उन ग्वाले
की तरह मैं उन्हें खूटे से बाँधूँगा कुल्ल
हरी पास डालूँगा दो चार पुत्रकारा
देकर और पीछे एकाध दण्डा जमाकर
उन्हें दुह लूँगा।”

“उन विचारी गायों को खुले
मैदान में चरने की मनाई थी। ये तो
खूटे के आगे पकी हुई हरी घास की
साती थीं। अठ उनकी वही आरत
पड़ गई थी और उसी में उन्हें मुग्न
लगताना था।”

“उन विचारी गायों के आगे सदा
रस्सी और दरद रहता था। वह
मेरे पास उनसे देखा नहीं। गौतम,
बना, उन गायों को मेरे पास रहना
कैसे मुशता।”

“पर गौतम, मुन, महाशूर लोगों
के साथ अधिक बोलचाल नहीं करता।
सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहर
सकता है। महाशूर यह जानते थे
कारण कि वे गुफा में मा देख
सकते थे।”

की उमर्य प्रेरणा नहीं दे रहे हैं। गीतम
मैंने यह पहिले ही कहा था कि इस
दुनिया में तो 'प्रभु' मर गया
है, और अब फिर यह कहना है कि—
इस समय प्रभु तुम्हें 'अवतार' लेना
चाहता है। तू इसके लिए तैयार होना।

इसके बाद महावीरने नेप खोल
और पूर्ण तेजस्वता से कहा— गीतम,
देववल्लभ, भाषी मगवान्, खड़ा हो
जा, और पहाड़पर चढ़ने लग, वृद्धता
हुआ, पलाग मारता हुआ और शीघ्र
पुष्पोंकी हँसी करता हुआ और टेरि
बोंको थपेड़े देता हुआ ऊँच-ऊँचे और
ऊँचे चढ़ने लगा।

इसी समय गीतमके शरीर में
विजली की शक्ति सी आई। उसने
माथा ऊँचा किया और वह आगे
चढ़ने लगा। शरीर पर कंघारे बल
उपने हवा में फेंक दिए।

एक, दो, तीन टेकरियों पार की
होंगी कि एकाएक गीतम को तिहगर्जना
सुनाई दी।

गीतम वहीं रुक गया और उसके
मुँह से सहज में निकल पड़ा—“प्रभो,
सहाय करो, रक्षा करो।”

“श्री भय के धातावाणकी चाहने
वाली दुनियाकी मछली, तू दिन रात
मय भयसे ही तड़पड़ाती रहती है।

यदि मने शोषादि सभी दुष्ट शक्तियों
पर जय न किया होता तो तुम्हारे
असीम शोष थावा। इस तरह

जिन्दगी बिताने की अपेक्षा सिद्ध के
मुन में जीतीजी सुनने का साहस क्या
'उच्च तानदागी' नहीं है! पट फे बल
चलकर रंग रंगकर दम परी खान
लम्बा करने की अपेक्षा वृद्धता नाचना
हूँगा उड़ना और संभय करने में
क्या अधिक मजा नहीं है! दूसरे की
मदद, रक्षा और दया से जीवित रहने
का अपेक्षा मय की मरदागी की भेंट
चढ़ाने में क्या अधिक स्वास्थ्य कुछ
नहीं है।

ये नाजुफ बदन की गुलामी में गले
तक बँधे हुए मनुष्य, इस मय की
तूने ही उत्पन्न किया है। तू सर भगा,
क्या इसी तरह तूने दुनिया में भय
की सृष्टि नहीं की है! मर निह तुम्हें
डराता है, पर तू चाहे त्रितने सिद्धों
के कार पकड़ सकता है। इस सत्य की
तू क्यों भूल गया है!” इस प्रकार
महावीर ने कहा।

“देववल्लभ, मैं तुम्हें एक धरणी
भीती सुनावा हूँ। मुन,

गीतम, मैं एक दिन इसी शिखर
पर बैठा हुआ अनन्त आकाश में खेल
रहा था। लोग इसे ध्यानदया कहते हैं।
पर इस दशा में जो अनेक युद्ध चलते
हैं, और समुद्र स्नान, धूपस्नान तथा
भयकर तूफान चलते हैं, उनको खबर
कुछ ही विवेकियों को होती है।

इसी समय कुछ गावों को लेकर
पास आया। मुझे राधु

समझकर बोला—बाबाजी, मैं जब तक दाहिंसा श्राप्ता हू तब तक इन गायों को सन्हालना । यह कहकर वह चला गया । गौतम, समझा ? ये गायें और ग्वाला क्या हैं ? ये मनुष्य गायें और इनके दिल पर सत्ता चम्काने वाले राजा और धर्म के टेढ़ेदार गुण ये ग्वाले हैं । नू समझा ।

उस ग्वाले ने विचारा होगा कि मैं भी एक साधु होने से इन गायों को बाध रखने की कला जानता होऊँगा । और इसीलिये वह मुझे गायों को सीप कर चल दिया ।

पर म तो टेकरी पर बैठे हुआ बादलों के उस पार उड़ रहा था यही बूढ़ रहा था । मुझे उन गायों की क्या परवाह थी ?

आकाश से कामधेनु लाने की शक्ति मुझ में थी, पर मैं बेगरज, मुझे इन गायों की क्या परवाह ?

जिस तरह मुझे गायों का ग्वाला या मालिक बनने की इच्छा नहीं थी, उसी तरह लकड़ी से मार मारकर ठनका दूध छीनने वाले उन्हें सदा बांध रखने वाले ग्वाले से उन गायों को छुड़ाने की भी इच्छा नहीं थी । कारण मैं प्रकृति के नियम और उसकी प्रक्रिया को बराबर जानता था । मुझे किसी भी दशा में खेद नहीं होता था । मैं लागणी मात्र से परे था । मेरी प्रकृति शक्तियाँ किसी की तृण भेटने में सहायक हो जाँय, यह दूसरी बात है, पर

मेरा स्वयं किसी की खेद पहुँचाने या किसी पर दया करने का स्वभाव नहीं था ।

इसीलिये मैंने उन गायों की परवाह न की और अपने प्यान में मस्त रहा । मुझे इस तरह सापरवाह देख कर गायें स्वयं किसी गाँव के रास्ते चल गईं ।

“गौतम, ये बिचारी गायें क्या बित्तू यह समझती होंगी कि उस ग्वाले की तरह मैं उन्हें खूटे से बाँधूँगा कुछ हरी घास डालूँगा, दो चार पुचकारा देकर और पीछे एकाध दण्डा जमाकर उन्हें पुहूँ लूँगा ।”

“उन बिचारी गायों को खुले मैदान में चरने की मनाई थी । वे तो खूटे के आगे पड़ी हुई हरी घास को खाती थीं । अतः उनकी यही आगत पड़ गई थी और उसी में उन्हें सुख लगता था ।”

“उन बिचारी गायों के आगे सदा रस्सी और दण्ड रहता था । वह मेरे पास उनसे देखा नहीं । गौतम, बता, उन गायों को मेरे पास रहना कैसा मुशकिल ?”

“पर गौतम, सुन, महावीर लोगों के साथ अधिक बोलचाल नहीं करता । सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहर सकता है । महावीर यह जानते थे कारण कि वे गुफा में भी देख सकते थे ।”

की समर्थ प्रेरणा नहीं दे रहे हैं! गौतम मने यह पहिले ही कहा था कि इस दुनिया में से 'प्रभु' मर गया है, और अब फिर यह कहना है कि— इस समय प्रभु तुझमें 'श्रवतार' लेना चाहता है। तू इसके लिए तैयार होजा।

इसके बाद महावीरने नेत्र खोले और पूण तेजस्वता से कहा— गानम, देववल्लभ, भाषी मगवान्, खड़ा हो जा, और पहाड़पर चढ़ने लगे, कूटना हुआ, फलाग भारता हुआ और क्षीण पुरुषोंकी हँसी करता हुआ और टेफ़ि बोंबो यपेदे दत्ता हुआ ऊँचे-ऊँचे और ऊँचे चढ़ने लगा।

इसी समय गौतमके शरीर में बिजली की शक्ति सी आई। उसने माया ऊँचा किया और यह आगे बढ़ने लगा। शरीर पर के सारे वस्त्र उसने हवा में फेंक दिए।

एक, दो, तीन टेकरियाँ पार की होंगी कि एकाएक गौतम को सिंहगर्जना सुनाई दी।

गौतम वहीं रुक गया और उसके मुँह से सहज में निकल पड़ा—“प्रभो, सहाय करो, रक्षा करो।”

“ओ भय के वातावरणको चाहने वाली दुनियाकी मछली, तू दिन रात भय भयसे ही तड़पताती रहती है।

... क्रोधादि सभी दुष्ट तियों न किया होता तो तुम्हारा आता। इस तरह भय की

जिदगी विनाने की अपेक्षा विद के मुग में जीतेजी घुसने का साहस क्या 'उच्च खानदानी' नहीं है? पेट के बल चलकर रँग रँगकर दस वर्ष जीवन लम्बा करने की अपेक्षा कूटना नाचना हँसना उड़ना और सवर्ण करने में क्या अधिक मजा नहीं है? दूसरे की मदद, रक्षा और दया से जीवित रहने की अपेक्षा भय को मरदानगी की भेंट चढ़ाने में क्या अधिक स्वार्थ्य सुख नहीं है?

ऐ नातुक बदन की गुलामी में गले तक फँसे हुए मनुष्य, इस भय को तूने ही उत्पन्न किया है। तू सच बता, क्या इसी तरह तूने दुनिया में भय की सृष्टि नहीं की है? यह सिंह तुझे डराना है, पर तू चाहे त्रितने सिंहीं के कान पकड़ सकता है' इस सत्य को तू क्यों भूल गया है?" इस प्रकार महावीर ने कहा।

“देववल्लभ, मैं तुम्हें एक क्षणकी भीती सुनाता हूँ। सुन,

गौतम, मैं एक दिन इसी शिखर पर बैठा हुआ अनन्त आकाश में खेला रहा था। ले ग इत्ते प्यानदशा कहते हैं। पर इस दशा में जो अनेक युद्ध चलते हैं, और समुद्र स्नान, स्यस्नान तथा भयकर तूफान चलते हैं उनको खबर कुछ ही विवेकियों को होती है।

इसी समय कुछ गायों को लेकर एक ग्वाला मेरे पास आया। मुझे साधु

समझकर बोला—बाबाजी, मैं जब तक यादिस आता हू तब तक इन गायों को सम्हालना । यह कहकर वह चला गया । गौतम, समझा ! ये गायें और ग्वाला क्या हैं ? ये मनुष्य गायें और इनके दिल पर सत्ता चलाये वाले राणा और धर्म के टेढ़े द्वार गुरु ये ग्वाले हैं । तू समझा ।

उस ग्वाले ने विचारा होगा कि मैं भी एक साधु होने से इन गायों को बांध रखने की कला जानता होऊँगा । और इसीलिये वह मुझे गायों का सीप कर चल दिया ।

पर मैं तो टेढ़री पर घेठा हुआ बादलों के उस पार उड़ रहा था, वहीं रूद रहा था । मुझे उन गायों की क्या परवाह थी ?

आकाश से कामधेनु लाने की शक्ति मुझ में थी, पर मैं बेगरज, मुझे इन गायों की क्या परवाह !

जिस तरह मुझे गायों का ग्वाला या मालिक बनने की इच्छा नहीं थी, उसी तरह लकड़ी से मार मारकर उनका दूध छीनने वाले उन्हें सदा बांध रखने वाले ग्वाले से उन गायों को छुड़ाने की भी इच्छा नहीं थी । कारण मैं प्रकृति के नियम और उसके प्रक्रिया को बराबर जानता था । मुझे किसी भी दशा में खेद नहीं होता था । मैं लागणी मात्र से परे था । मेरी प्रकट शक्तियाँ किसी को टूटा मेटने में सहायक हो जाँय, यह दूसरी बात है, पर

मेरा स्वयं किसी को खेद पहुँचाने या किसी पर दया करने का स्वभाव नहीं था ।

इसीलिये मैंने उन गायों की परवाह न की और अपने ध्यान में मस्त रहा । मुझे इस तरह सापरवाह देख कर गायें स्वयं किसी गाँव के रास्ते चल गईं ।

“गौतम, ये विचारी गायें क्या चित् यह समझती होंगी कि उन ग्वाले की तरह मैं उन्हें खूटे से बांधूंगा कुछ हरी घास डालूंगा, दो चार पुचकारा देकर और पीछे एकदम डरदा जमाकर उन्हें धुह लूंगा ।”

“उन विचारी गायों को खुले मैदान में चरने की मनाई थी । ये तो खूटे के आगे पकी हुई हरी घास को खाती थीं । अतः उनकी वही आरत पड़ गई थी और उठीं में उन्हें सुख लगता था ।”

“उन विचारी गायों के आगे सदा रस्मी और डरदा रहता था । वह मेरे पास उनसे देखा नहीं । गौतम, बता, उन गायों को मेरे पास रहना कैसे मुझता !”

“पर गौतम, सुन, महावीर लोगों के साथ अधिक बोलचाल नहीं करता । सिद्धनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहर सकता है । महावीर यह जानते थे कारण कि वे गुफा में भी दूध सकते थे ।”

और महावीर की भाया त्रितनो सिद्ध और बालक समझ सकते हैं उतनो गायें और ग्वाले नहीं समझ सकते। कारण कि सिद्ध के उच्छ्वास को भी गायें दुग्ध मानती हैं। इसीलिये मैं गुफाओं, पर्वतशिखरों, बादलों या अपने विचारपुत्रों से ही बात करता हूँ। और यदि कभी दुनिया में कोई बलवा करने वाला शेर दिला जाता है तो उसके साथ भी बातें कर लेता हूँ।

‘श्री देववल्लभ, मेरी समझदारी और ज्ञान बाहर की गुफा में रहा था, अतः शहरी लोगों का यह भयंकर मालूम होता था। मेरी समझदारी एकान्त गिरिशिखर की शिला पर जन्मी थी, और उसका बालक जन्म से ही समुद्रतल से अनन्त आकाश तक उड़लता था।

यह तन्दुहस्ती, यह मस्ती और यह अमसिद्ध शक्ति दुनिया को भड़काने वाली है। कारण कि बाड़ में या घर में, लूटे से बचे रहने में या दो गज की जमीन में लोटने या पेट घसीटकर बसने जसा प्रवृत्ति में इनकी ‘दुरधित अग्नि’ का खैर है। जब हरी घास इनके सामने पड़ जाती है तो वे उसे खाकर तथा वही लोट-पोट कर चुश हैं। वही बात इनकी प्रवृत्ति में बैठाने के लिये सुगों से अनन्त ग्वालों ने भ्रम है। ‘श्री दे देववल्लभ, चोटी पर और गुफा-गुफा में मेरी

समझदारी को जानने वाला मस्त बालक मौजूद है और आगे रहेंगे। और कुछ समय बाद उन मस्त बालकों को नहीं देखने वाली गाय उन चोटियों को पूजने जायेंगी।’

‘श्री गौतम मैं हसी नहीं करता, मैं तुम्हारे जैसे शत्रुजन्म पर चढ़ने वाले का ‘ईश्वर’ बनने में आनाकानी कर रहा हूँ और ये विचारी गायें तो पत्थर के टुकड़े को भी ईश्वर बनाकर पूजती हैं। इन गायों और ग्वालों की कितनी ओछी महत्वाकांक्षा है, कितनी ओछी डीठता है ! इस महत्वाकांक्षा पर तू हँसता नहीं ! ‘ये पत्थर को ईश्वर बना रहे हैं’ इसी से मालूम होता है कि इनका हृदय कोई दूसरी वस्तु को नहीं चाहता, केवल ईश्वरत्व के लिये तरस रहा है।

‘गौतम, पत्थर को ईश्वर बनाने वालों के प्रति तुम्हें इसी नहीं आनी ! ऐश्वर्य तो विश्व में सब जगह फैला हुआ है। इसलिये जब मनुष्य अपना ऐश्वर्य स्वीकार करने और जाहिर करने में जिनना विवृत बनता है, उतना ही उसके अन्दर का दवा हुआ ऐश्वर्य किसी दूसरे पात्र या पदार्थ को ‘ईश्वर’ बनाने लिये प्रवृत्त होता है। यह दवा हुआ ऐश्वर्य ही कहता है कि—‘चलो पत्थर को ही ईश्वर बनाकर पूजा जाय क्योंकि ईश्वर-पूजा के बिना सब भूल है।’

‘गौतम, इन ग्वालों ने गायों को अपने ऐश्वर्य को पहिचानने, स्वीकार करने और जाहिर करने में शरम, पाप, अनीति और अपराध मानने की शिक्षा दी। क्योंकि जब पर ही सहज रीति से राज किया जा सकता है। इसीलिये इन ग्वालों ने गायों को वितथ भी सिखाइ।

लम्बे समयसे इस प्रकार सिरसाई गई गायें स्वयं ग्वालोंसे कहती हैं कि तुम हमारे शरीर मेंसे दूध दुह लो, और उद्य दूधकी मलाईसे सशक्त बनकर अनन्त काल तक हमारे ऊपर स्वामित्व करो, और हमारी जिन्दगी को ‘मुरझित’ रखनेके लिए हम सूँटेसे बाँधो, रस्सा और बण्डेका प्रयोग करो। जैसा तुम्हारा मन चाहे हम रखो। तुम्हारी शरण में ही हमें सुन है।”

नागरिक हाकिमोंसे कहते हैं—हमारे पासले कर लो और तुम्हें अपनी कानि की कायम रखने और बढाने के लिए किये गये युद्धों में होमने के लिये हमारे शरीर चाहिए तो वे भी तैयार हैं। क्योंकि हमें तुम्हारे इस कथनमें विश्वास है कि—“तुम जो कुछ कर कर रहे हो, यह हमारी रक्षाके लिए ही कर रहे हो।” हम तो तुम्हारा अन्न रख और अपना अन्नखण्ड ‘जुड़लो चोटलो’ चाहते हैं। और इसलिये तुम्हारी विना शर्त बफादारी बतानेमें ही हमारा कल्याण है।

भक्त लोग गुदघोंसे कहते हैं कि हमारा धन ही नहीं किन्तु तन मन और आत्मा भी तुम्हें समर्पित है। तुम जो कहते हो वही हमारी नीति है। तुम नहीं से जाओ वही हमारा मोक्ष है।”

‘और गौतम ऐसा बोलनेवाले लोकगणनीय हृदय तो पत्थरकी भी ईश्वर बनाने के लिए तरसते हैं, यह उन विचारोंकी कहाँ पना है? इसीलिये कहता हूँ कि मैं गायोंसे नहीं बालता और न ग्वालों से। मैं सिद्धा और बालकसे बोलता हूँ। और अपनी उन्नति करने वाला दुनियासे बोलता हूँ। गरीब बात तो यह है कि मैं ईश्वरको उपास करता हूँ।” इसलिये हे देव परलम, मुझे उन गायों के विषयमें कोई विचार नहीं आया। और गाएँ भी जिन चीनमि खुश होती, बहलती वे मेरे पास थी ही नहीं। यह देखकर गाएँ स्वयं अपने निवासकी ओर चली गईं। वे विचारी गरीब गाएँ स्वयं ग्वालोंके बाड़ेकी तरफ चली गईं।

कुछ समय बाद यह ग्वाला एक गाय को साथ लिए हाँफता हुआ मेरी तरफ आया। गौतम, उसका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। उसकी आँखें अग्निचरणा रही थी। उसके हाथ में दैत्य का बल आ गया था। उसने रस्मीका छोड़ मेरे ऊपर जोर से फटकारते हुए गरजकर कहा। उस

गरजना से आकाश के परदे भो फटने लगे ।

‘रे धूर्त, तू मेरी गायों को अपने बाँके म छिपाना चाहता था दूसरे की सम्पत्ति चुराने में ही तू अपने अचौर्य प्रतको सार्थक मानता है ?’

इसी समय आकाश म बादल फिर आए और उनसे एक प्रकाश निकला । उसमें इन्द्र अपने पूरे ठाठ में प्रकट हुआ और कहने लगा—“प्रभो, बारह बारह वर्ष तक आपके ऊपर आफतें आनेवाला हैं । मनुष्यत्व और देवकृत सक्तों के बीच आपको बड़ा समय बिताना है । अतः मुझे अपने देह रक्षक रूप से रहने की आज्ञा दीजिए ।”

इन्द्र आकाश म अघर उड़ा हुआ था । उसको एक आल मेरी तरफ थी तथा दूसरी ओर खाले के ऊपर अग्नि बरसा रही थी वह ओल मानो कह रही थी कि यदि आज्ञा मिले तो एक क्षण म इसे मस्म कर दू

मैं मौन रहा ।

‘प्रभो, मेरा धीरज टूट रहा है । यह उदत हाथ पक रहा है । और वज्र मस्ती से गिरने के लिए पड़पड़ा रहा है ।’ इन्द्र ने फिर कहा । और मैं रिलखिलाकर हँस पड़ा । इन्द्र, तुम्हारे वज्र में मस्ती है यह सन्तोष की बात है पर तुम्हारी मक्ति में विवेक कब आयेगा । जरा बचाओ तो ? तू मदद करने आया है ? किसकी ? किस

लिए ? किस प्रकार ? किस कारण ? और सहायता ? इन बातों का कुछ विचार भा किया है ? तू मुझमें मदद स्वीकार करनेकी प्रार्थना करता है ? पर इस प्रार्थना में ही मेरा सख्त अपमान भरा हुआ है ? तू समझता है ? मदद, सहाय, दया, रक्षण किसका ? क्या मुझे ‘बिचारा’ मान लिया है ? क्या तूने मुझे दुःख के नामने ही तड़प नेवाला मान लिया है ? क्या मार, धास और कुदरतची पीड़ादायक घटनाएँ बीमारी आदिम, जि हैं मनुष्य और दन भी हटाना चाहते हैं हमारी सुत आत्स जोड़ अजीब प्रकारकी खूबी आनन्द और लगन नही दख सकती ? ओ इन्द्र, समझ, तरे वज्रम अनन्त गुणी सामर्थ्य मेरा इच्छा शक्तिम है । जिस गुल शक्तिको स्थूल रूपम प्रकट करनेम मुझे कोई रस नहीं है । आज मनुष्यम शक्तिका पिलाव बहुत कम है । वह किसी भी तरह बदे यह देखनेम ही मुझे खुशी है । यदि मनुष्य मेने ऊपर आफत लाकर भी अपनी शक्तिका खिलाव करता है इसमें मुझे आनन्द ही आनन्द है ।

“ओ इन्द्र सामनेके पत्थरन ऊपर उग हुए पौधपर निगाह डाल यह चारों ओर हरियाली छोड़ता हुआ कैसा खिल रहा है । दग इसे किसने सिखाया ? सरन वरमात और आग सी किरणोंने सामने यह नाजुक पौधा अपनी रक्षाके लिए किन मनुष्य और देवोंसे कहता फिरता है ?”

‘श्रो इन्द्र, यह समझ कि—‘सहायता’ की निरन्तर इच्छा करना यही मनुष्य का नरक है। सहायता करनेवाले जिसकी सहायता करते हैं उमका नुकसान ही करते हैं इस तत्वको मनुष्य तो क्या देव भी नहीं समझ सके हैं। तू मुझे ‘जिन’ और ‘श्रद्धा’ को दीन, लाचार, परमुग्धापेक्षी पामर प्राणी बनाना चाहता है यह तेरे विचारमें भी नहीं आया। सहायता का मूल्य आंकनेवाले, तुम मेरी छोटी कीमत कर रहे हो। सहायता करनी है तो शक्ति बढ़ाने में मदद करो। दीन हीन बनाने और परार्थी बनाने के लिए सहायता न करो। स्वर्क्षा और जय की शक्ति प्रत्यक्ष जीवात्मा में है। उसे प्रकट करनेमें उसके विकासमें सहायता करनी हो तो करो, पर परोक्ष रीतिमें, दूर रहकर सूर्य को किरणों का तरह प्राकृतिक भावसे करो। जीवात्माओं की खरी सहायता यही है। इन्द्र, तू कितना हा बलवान क्यों न हो पर अभी भी तू सोने चांदीकी थड़ियोंसे, सुन दुःखकी भावनाओंसे जकड़ा हुआ ‘गुलाम’ है। वासना का दास है। जो बंधनमात्रको इसता है, और वासनाओं को अपना छिगरीपर नाच नचाता है वह ‘धीर’ एक ‘गुलाम’ की सहायता चाहेगा या इच्छा करेगा। हा हा हा पर तुझे अभी इस असीम सत्यको समझनेमें समय लगेगा। हीरा और माणिकों से सजा हुआ तू इस ‘नग्न सत्य’ को नहीं समझ सकता। भला

भाई, इस समय तू अपने स्थानको सिधार, मुझे अपना आनंद अकेले ही लेने दे।”

‘हे देवगन्धर्व गीतम, इन्द्र तो माया भुक्त्वाकर श्रद्धा हो गया, और मेरी दृष्टि के सामने यही ऋषोपातुर म्वाला था। वह सब क्षणमात्र में हो गया। उस म्वाले ने न तो इन्द्र को देखा और न उक्त बातचीत ही सुनी। क्या दुनियाँ का कीड़ा देवों के देव को देख सकता है? मेरे मीन ने म्वाले को ऋषोपाग्नि पर धी का काय किया। वह सोंप की तरह कुँफार कर रखी को मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए बोला—रे पापी, दूसरे की गोँवें चुराने समय तुझे नरक का भी भय नहीं लगा।

मैंने उस समय म्वालेकी ओर आँख उठा कर कहा—रे गुमानी, पाली हुई गायों को भी गुमाने वाला पामर, किस बल से तू मुझ एक पहाड़ी पुरुषको रोष दिमाता है? आत्म ठग, शर्म खा, शर्म खा। तू अपनी वागज की तलवार को म्यान में रख। नहीं तो तू ही अधिक दुखी होगा। मुझे पहिचानता है? नहीं नहीं, जब तू अपने को ही नहीं पहिचानता तो मुझे क्या पहिचान सकेगा? पर तुझे इतनी खबर तो होनी ही चाहिए कि मैं किसी ग्राम में या सीमा में नहीं, किन्तु पहाड़ पर हूँ। जहाँ ‘बाड़ा’ होता ही नहीं। और जहाँ गायों का दुर्गांध भी नहीं होती।

गरजना से आकाश के परदे भी फटने लगे ।

‘रे धूर्त, तू मेरी गायों को अपने बाँके म छिपाना चाहता था दूसरे की सम्पत्ति चुराने में ही तू अपने अचौर्य मतको साधक मानता है ?’

इसी समय आकाश में बादल घिर आए और उनसे एक प्रशाश निकला । उसमें इंद्र अपने पूरे ठाठ में प्रकट हुआ और कहने लगा—“प्रभो, बारह बारह वर्ष तक आपने ऊपर आफने आनेवाला है । मनुष्यद्वारा और देनकृत सकटों के बीच आपको बड़ा समय बिताना है । अतः मुझे अपने देह रक्षक रूप से रहने की आज्ञा दीजिए ।”

इंद्र आकाश में अधर खड़ा हुआ था । उसकी एक आँख मेरी तरफ थी तथा दूसरी ओर घाले के ऊपर अग्नि बरसा रही थी वह ओर मानो कह रही थी कि यदि आज्ञा मिले तो एक क्षण में इसे भस्म कर दू

मैं मौन रहा ।

‘प्रभो, मेरा धीरज टूट रहा है । यह उदत हाथ फड़क रहा है । और बज्र मस्ती से गिरने के लिए फड़फड़ा रहा है ।’ इंद्र ने फिर कहा । और मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा । इंद्र, तुम्हारे बज्र में मस्ती है यह सनोप का बात है पर तुम्हारी भक्ति में विवेक क्या आयगा ? जरा बग़ाओ तो ? तू मदद करने आया है ? किसकी ? किस

लिए ? किस प्रकार ? किस कारण ? और सहायता ? इन बातों का कुछ विचार भी किया है ? तू मुझसे मदद स्वीकार करनेकी प्रार्थना करता है ? पर इग प्रार्थना में ही मेरा सख्त अपमान भरा हुआ है ? तू समझता है ? मदद, उहाय, दया, रक्षा किमका ? क्या मुझे ‘बिचारा’ मान लिया है ? क्या तूने मुझे दुःख के नामसे ही तड़पनेवाला मान लिया है ? क्या मार, श्रास और कुदरतनी पीड़ादायक पटनाएँ बीमारी आदिम, जिन्हें मनुष्य और देव भी हटाना चाहते हैं, हमारी सुख आग्नि जोड़ अतीव प्रकारकी खूबी आनन्द और लज्जत नहीं देल सकती ? ओ इंद्र, समझ, तेरे बज्रमें अनन्त गुणी सामर्थ्य मेरी इच्छा शक्तिमें है । जिस गुण शक्तिको स्थूल रूपमें प्रकट करनेमें मुझ कोई रस नहीं है । आज मनुष्यमें शक्तिका खिलाव बहुत कम है । वह किसी भी तरह बढ़े यह देखनेमें ही मुझे खुशी है । यदि मनुष्य मेरे ऊपर आप्त लाकर भी अपना शक्तिका खिलाव करता है हममें मुझे आनन्द ही आनन्द है ।

‘ओ इंद्र, गामनक पत्थरके ऊपर उग हुए पौधपर निगाह डाल वह चारों ओर हरियाली छोड़ना हुआ कैसा तिल रहा है । देख इसे किसने सिलाया ? सतन बरसात और आग सी किरणोंके सामने यह नातुक पौधा अपनी रक्षाके लिए किन मनुष्य और देवोंसे कहता फिरता है ?’

“ओ इन्द्र, यह समझ कि—‘सहायता’ की निरन्तर इच्छा करना यही मनुष्य का नरक है। सहायता करनेवाले जिसकी सहायता करते हैं उसका मुकसान ही करते हैं इस तत्वको मनुष्य तो क्या देव भी नहीं समझ सके हैं ? तू मुझे ‘जिन’ और ‘शरहत’ को दीन, लाचार, परमुत्पापची पामर प्राणी बनाना चाहता है यह तेरे विचारम भी नहीं आया। सहायता का मूल्य आँकनेवाले, तुम मेरी खोटी कामत कर रहे हो ? सहायता करना है तो शक्ति बढ़ाने में मदद करो। दीन हीन बनाने और पराधान बनाने के लिए सहायता न करो। स्वर्क्षा और जय की शक्ति प्रत्येक जावात्मा में है। उस प्रकट करनेमें उसके विकासमें सहायता करना ही तो करो, पर परेन्द्र रातिसे, दूर रहकर सूर्य की किरणों की तरह प्राकृतिक भावसे करो। जीवात्माओं का खरी सहायता यही है। इन्द्र, तू कितना ही बलवान क्यों न हो पर अभी भी तू सोने चांदीकी बेदियोंस, सुन हुएकी भावनाओंसे जकड़ा हुआ ‘गुलाम’ है। वासना का दास है। जो बंधनमानको हसता है, और वासनाओं को अपनी छिगरीपर नाच नचाता है वह ‘वीर’ एक ‘गुलाम’ का सहायता चाहेगा या इच्छा करेगा ? हा ‘हा’ पर तुझे अभी इस असीम सत्यको समझनेमें समय लगेगा। हीरा और माणिकों से सजा हुआ तू इस ‘नग्न सत्य’ को नहीं समझ सकता। मला

भाई, इस समय तू अपने स्थानको सिधार, मुझे अपना आनंद अचेले ही लेने द।”

‘हे देवयल्लभ गीतम, इन्द्र तो माथा झुकाकर अदृश्य हो गया, और मेरी दृष्टि के सामने वही शोषातुर ग्वाला था। वह सब क्षणमात्र में हो गया। उस ग्वाले ने न तो इन्द्र को देखा और न उस बातचीत ही सुनी। क्या दुनियाँ का कीड़ा देवाँ के देव के देख सकता है ? भरे मीन ने ग्वाले की शोषाग्नि पर घी का काय किया। वह सोंप की तरह कुँपकार कर रखी को मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए बोला—रे पापी, दूसरे की गँयें चुराने समय तुझे नरक का भी भय नहा लगा।

मैंने उस समय ग्वालेकी ओर श्रॉय उठा कर कहा—रे गुमानी, पालो हुइ गावों को भी गुमानो वाला पामर, किस बल से तू मुझ एक पहाड़ी पुरुषको रोब दिशाता है ? आत्म ठग, शरम खा, शरम खा। तू अपनी कागन की तल वार को म्यान में रख। नहीं तो तू ही अधिक दुखी होगा। मुझे पहिचानता है ? नहीं नहीं, जब तू अपने को ही नहीं पहिचानता तो मुझे क्या पहिचान सकेगा ? पर तुझे इतनी खबर तो होनी ही चाहिए कि मैं किसी ग्राम में या सीमा में नहीं, किन्तु पहाड़ पर हूँ। जहाँ ‘बाझ’ होता ही नहीं। और जहाँ गावों की दुर्गंध भी नहीं होती।

भोले, तू अपनी गायों से ही पूछ, क्या हम स्वतन्त्र खुली इवा में रह सकती हैं ? सिंह और श्रवधूर्तों के निवास रूप इस पहाड़ी प्रदेश में 'बाड़ा' कैसा और 'चोरी' कैसी ? चोरी की हठ्ठा रसने वाले ग्वालों ने ही ये 'बाड़े' बनाये हैं। तुमने भक्तों को चोरी में पाप बताया और चोरोमाप का, कवल इन्की ही नहीं किन्तु बुद्धि स्वमान बल और साहसिक वृत्तिकी चोरी का अग्रसर भी तुम्हीं लाए। चोरीमें मिल सकने वाली तमाम वस्तुओं पर अपना अकेला अधिकार करके और उस काने को निराबाप बनाने के लिए ही तुमने दूसरों को चोरी करने का निषेध किया। सारे सुख को अकेले ही भोगने की लालशासे ही दुनिया के दूसरे लोगों को चीन्मापमें पाप बताकर भड़काया और भयप्ररित त्याग और सन्तोष में 'भविष्य का सुख' समझाया। सच पूछा जाय तो तुम्हीं दुनिया के सारे चोर हो। इतना होने पर भी दुनिया के रक्तक के रूपमें पुजने के लिए नित्य नये विकल्प उठाते हो।

पर मैं तो चोरों का भार पृथ्वीपर संकम करने आया हूँ। और रस्सी बेड़ी तथा बाड़ेका सहार करनेमें कभी कभी मजा होता हूँ। गायके मांस पर जीवित रहनेवाली मक्खियों, तुम अपनी भरी भयभ्रमण्डल बंद करो, तुम अपने बाड़ेकी दीवारें तोड़ दो, रस्सी और दण्ड जला दो और 'वह नहीं करो वह

नहीं करो' इन नियेशों को 'हा' की सद्भावनामें बदल दो। यह समझ लो कि इन सब पापघड़ों का काल महावीर पैदा हो गया है। लौकिक भ्रमोंकी जगह लोकोत्तर दिव्यताकी ज्योति जगानेवाला पेशरी सिंह जन्म ले चुका है। यह जान कर चुपचाप गायों को मुक्त करो और अपना पुराना रुढ़ा खेल बंद करो। अपनी मालिकीके पीछे मरनेवाले ग्वाले दूररेपर मालिनी चलाने के पहिले खुद अपने ऊपर मालिनी चलाना सीखो। जो अपने ऊपर हुकम कर सकता है और स्वयं अपने प्रति नमकहलाल हो सकता है वही दूसरे पर हुकूम चलाने या उन पर सत्ता पानेका अधिकारी हो सकता है। 'जो अपने भीतरकी अनेक प्रणियों वासनाओं और शक्तियोंके साथ स्वयं युद्ध करता है और प्रत्येक सवप में निखरे हुए अपने स्वरूप में आनन्द ले सकता है वही राय करने लायक है।"

'ओ ग्वाले तू मेरे घामने नजर कर, तू राजा है या गुलाम ? मालिक है या मिल्कत ? इस प्रश्न के विचार की भरी म तपकर तू अपने स्वरूप को प्राप्त कर।"

"ओ देववल्लभ, मैं अपना अतिम वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि वह ग्वाला जमीनपर गिर पड़ा और उसके शरीर के पुद्गल निकल निकल कर गए आकारको धारण करने लगे। दरते देखते ग्वालेके शरीरकी जगह ऊट दिखा। वह अपनी पीठपर मानो भार साधनेको कह रहा था। वह ऊट चलने

लगा। थोड़ी दूर गया होगा कि वह रूप पलटकर गरुडता हुआ सिंह बन गया। देखते ही देखते सिंहने बालकका रूप धारण कर लिया। गौतम, वह बालक भी हसता हसता अदृश्य हो गया। मेरे सामने मात्र पर्वतकी शिखरें और त्रिविध तापको इसनेवाले अपना विकास स्वयं करनेवाले और अपने आनन्दमें मग्न झोलनेवाले शृङ्गोंके सिवाय दूसरा कुछ नहीं रहा।

आप बीती घटना पूरी हुई पर गौतमने इसका मर्म नहीं समझा। तब महावीरने गौतमसे फिर कहा—देववल्लभ तू समझा! मनुष्यमात्र इन तीनों दशाओंसे गुजरता है।

“गौतम, ऊट जिस तरह जितना चाहे और जैसा चाहे बोझ अपनी पीठ पर लदवानेको स्वयं बैठता है और दूसरे का बोझ ढोनेमें ही मरदानगी और ‘सद्गुण’ मानता है उसी तरह मनुष्य पहिली अवस्थामें सभी मनुष्यकृत कायदा, कानून, विधान, स्मृतियाँ, शास्त्र नीति और रीति रिवाजके बोझको अपनेऊपर लदवानेमें और इस बोझको ढोने में ही मरदानगी मनुष्यता सद्गुण और किसके लिए बोझ लादा जा रहा है और किस रूप रंग और स्वादका यह बोझ है।”

“परन्तु ओ देववल्लभ, ऊट जिस समय पीठपर बोझ लादे दौड़ता जाता है और चारों तरफसे गरम युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचना है तो मस्ती छोड़ता है और

सिंह बन जाता है। जिस पराये बोझको बार बार ढोता था उसे उठाने से इनकार करता है। और बोझके सिवाय स्वतंत्र जीवन बिताने की आवश्यकता उसे पहिले पहिल मालूम होती है। बोझका त्रास और एकांत स्थान ये दोनों उसे उसमें स्वातन्त्र्यका भान कराते हैं। ‘वह नीति’ वह अनीति’ इस तरह चल, इस तरह नहीं ‘अपना हित निश्चय करने का अधिकार उसे नहीं है’ आदि विधि निषेधाँके आधीन रहने की अब वह तैयार नहीं होना। वह पुरानी कीमतोंको तोड़ने के लिए सिंह बन जाता है पर नये मूल्य उत्पन्न करनेका योग्यता अभी उसमें नहीं आई।”

“देववल्लभ, अब वह बालक बन जाता है। जो सिंह नहीं कर सकता वह बालक करेगा। बालक निर्दोषताका अवतार है। अतीतकाल और अतीतकाल की गुलामियोंका उसे स्मरण ही नहीं, इसीलिए उसमें निर्दोषता भी है निडरता भी। भविष्यके सम्बन्धमें वह सकल विकल्प रहित होकर आनन्द स्वरूप है। बालक नई जिंदगी है, नया खेल है, पहला प्रवृत्ति है, जीवनरूप का पवित्र विधान है, किसीकी इच्छाके पीछे खिचना नहीं, स्वयं अपना अनुसरण करता है। यह निर्दोष निर्विकल्प और निडर प्रवृत्ति, प्रत्येक वस्तुको उसके हित और नुकसानमें उसकी कौमत्त देनेमें आग्रही होती है। इसका उत्साह आग्रह और आत्मभद्रा अद्भूत होती है।”

“और गौतम, यदि तू अभी तक बालक नहीं बन सका तो 'वीर' कहींसे बन सकेगा। ओ देववल्लभ, अपनी निहत्ता और अपना आनन्द जैसे बालकका स्वभाविक है वैसा तेरा है क्या ?”

“ओ गौतम, कहो, अब तुम्हारा मेरा हाथ पकड़ने की तादानी छूटी या नहीं ? अब तुम अपने स्वरूपका विरवास कर सके हो ? तुम्हें अपनी खानदानी यत्तका भान हुआ ? कहो, भट पट कहो।”

भक्तिपरायण गौतम दीनतासे बोला— “प्रभो इतना, मुझे शानकी गहरी बातोंकी ध्वराहटमें न डालो। मुझे तो आप गुरुदेवकी शरण, दया और सहायता चाहिए।”

महावीरने सोचा और फिर सोचा और मनमें ही कहा— मेरे इन शब्दोंमें इसे शान आता नहीं दिखना। 'आशा के क्षेत्रकी ओरसे एक जोरका तमाचा जबतक मनुष्यकी नहीं लग जाता तब तक मनुष्य आशाकी गुलामीसे मुक्त होकर स्वावलम्बी नहीं बन सकता। मेरा वियोग ही इसे अपनी आर्षोसे देखनेवाला और अपने पलोसे उड़ने वाला बनायगा। मेरी सहायता माँगने की वृत्तिपर वह बल पड़तायगा और अपनी इस दीनवृत्तिकी निन्दा करेगा। और इसी पश्चात्ताप और स्वनिन्दाकी अग्निमें तपकर गौतम सबशक्तिमान

गा।

हुआ भी वही। महावीरके निवाप के बाद गौतम महादुःखी हुए और इसी महादुःखके बादलोंसे ही स्वरूप बोधकी ज्योति प्रकटी और वे खेवली हुए। उसी समय गौतमका जयघोष हुआ, इसा समय गौतमने शत्रुजय गिरिके उच शिपारसे महावीरके खिलाए वच नामृतोंका जयनाद किया। वे बचन आज भी शत्रुजय गिरिके मुनाई देते हैं—

“पुरिसा, तुममेव तुम भित्त
कि बहिया मित्तमिच्छसि”

पुरुषो, तुम ही अपने मित्र हो, क्यों बाहर मित्र ढूँढ रहे हो ?

“जे एग यामे से बहु यामे,
जे बहु यामे से एग यामे”

“जो अपनी आत्माको नमाता है वही सबको नमाता है। और जो सबको, नमाता है वही एकको नमाता है।

“सव्वतो पमत्तस्य भयं,
सव्वतो अप्पमत्तस्य पत्थि मयं”

प्रमादीको चारों ओर भयही भय है। अप्रमादी (चाग्रत आत्मइयोनि वाले) को कहीं भय नहीं।

“समय गोयम मा पमायए”

गौतम, क्षप्रमान मा प्रमाद न कर
“सम्मत दसीख करेति पाव”

सम्यग्दृष्टि पाप नहीं करता। इसकी क्रियाए निर्जराका कारण होती हैं।

संपूर्ण मानवता के प्रभापूर्ण प्रतीक की भावभरी कहानी

श्रमण अमिताभ

श्री शिखरचंद्र जैन

(१)

पद्मनाम को कौन नहीं जानता । वह सबसे परिचित है, और उससे सब । सौ एक दिन उसने देखा जीवराज, कुबेर धन, रत्नप्रभा, धु डि, सूर्य मल्ल आदि बालक बालिकाएँ—राज्योद्यान में खेल रहे हैं । उहाँ के बीच एक बालक अमिताभ भी खेल रहा है ।

जीवराज जरा नटखट था । रत्न प्रभा मोबी, कुबेर चंचल, धु डि तीव्रगति और सूर्यमल्ल हसोड़ा और अमिताभ पर ही पद्मनाम का ध्यान उस दिन बार बार खिंच जाता था । खेलते खेलते जीवराज कुएँ के पाट पर जा पहुँचा । वहाँ पहुँच उचक उचक कर विनोद व्यग्राण छोड़ने लगा । उसने अमिताभ का ध्यान भंग करने के लिये उसे ककरिये मारना शुरू किया, और जब अमिताभ का ध्यान उस ओर न गया तो उसने चिल्लाकर एक बड़ी ककरी चलाई । पर यह क्या जीवराज कुएँ में था । बालकों ने दग्ग यह पानी सं युद्ध कर रहा है । वे चीखे, चिल्लाये, तब वहाँ अमिताभ को भी मालूम हुआ कि

जीवराज कुएँ में गोते लगा रहा है । बालक धरराये इधर उधर देख रहे थे, और अमिताभ ने देखा, समझा और कुएँ में डूब गया । जीवराजने उसे जकड़ लिया । उसने उसे अपने कंधों पर चढ़ाया, और फिर बालकों से बर्झा को कहने और रस्सा लाने को कहा । बड़े आये रस्सा आया । अमिताभ के कंधों पर चढ़ जीवराज बाहर निकला ।

यह था अमिताभ । एकदिन फिर सब बालक खेल रहे थे । धु डि सबसे आगे दौड़ने में निकल जाया करता था, पर आज सबने उसे छुड़ाने की सोचली थी दौड़में जब वह आगे बढ़ता, कोई बालक उसे धक्का दे देता, कोई उसके सामने आ जाता, कोई उसे गिरा देता । उस दिन न वह खेल पा रहा था और न आगे ही बढ़ पाता था । सब चाहते थे कि अमिताभ सबके आगे रहे । आज वह आगे था । पर जब वह दौड़ में अधिक आगे पहुँच गया उसे लगा कि वह तो आयाय कर रहा है । इस स्थल तक तो धु डि को आना चाहिये

था। धुड़ि पाछे रो रहा था। उसने अपने भीतरी नेत्रों से दगा, उसने बालों का स्थिति को समझा, श्रीर पद्मनाभ ने आश्चर्य से दगा वह पाछे की ओर दौड़ रहा है लड़क हैराण है। वह धुड़ि को उठाकर भागने लगा है, और गन्धर्व स्थान के पहले उसे धकल कर आगे कर दिया है।

अमिताभ के पिता विदेश गये थे। वे उसके लिये मणि ककण लाये हैं। माता उसे पहनाकर बड़ा प्रसन्न है। मणि ककणों से युवक अमिताभ देवपुत्र सा नैचता है। वह खेलने खेलत बाहर निकला है। रासों में उसे रत्न प्रभा मिली है। उसने लालचार्द रक्षि से आन अमिताभ को, व उसके भय रूप को दगा है। वह उगमे बहुत छाटा है। उसने कहा "अभी तुम कितने अच्छे लगते हो। तुम्हारे ककण तो चमकते हैं। मेरे बापू जब दूर जायेंगे, ऐसे ही ककण लायेंगे न!"

'हूँ रत्न। लायेंगे तो। और तब हम दोनों के पास कगन होंगे।' ऐसा कहकर उसने साथ वह खेलने लगा। पर अमित का मन कचोट रहा था। उसके ककण उसे भारी लग रहे थे। वह खेलता रहा, और फिर उसने कगन उतार कर रत्न को पहना दिये। उसे पहनाकर वह बड़ा खुश हुआ। उसे लगा उसकी आत्मा का बोझ हटका होगा है। वह और खेला।

उसने अपने सहयोगियों को दगा। उसे लगा फिर भी कहीं कुछ कमी है। उसका मन रह रह कर उसे छेड़ रहा है। उसी देगा कंगन अब खेल रत्न प्रभा के ही पास है,। दूसरों के पास नहीं। उसने सोचा, "रत्न के पास ही क्यों हो। और क्या जीवराज, धुड़ि, सुमल्ल सब इनके बिना ही रह जायेंगे। क्या वे कगन हटें अच्छे न लगेंगे। वे सब मुझमें किंग बात में कम हैं,"। और फिर पद्मनाभ ने दगा कि अमिताभ खेल नहीं पाया। पर पर उसी शिवा से वृद्धा "बापू तुम दो कंगन ही क्यों लाये। अब जाना तो सबके लिये दो दो लाजा।"

(२)

पद्मनाभ ने फिर दगा कि अमिताभ हिम उपयकाये एक मुन्दर गुफतुल में प्रविष्ट किया गया है। गुफतुल उद्यानों और उपवनों के मध्य में है। पास ही एक घनाटवी है। जो वह अमिताभ अपनी आभा से गुफतुल को प्रकाशित कर रहा है। प्रात काल अन्य छात्रों से पहले जागता है। गुरुदेव और गुरुमाता को नमन और उनके चरणों की अमि वंदना करता है, नित्य क्रियाओं के उपरांत अध्ययन करता है। प्रात वायु सवनार्थ वह गुरुजी व सहपाठियों के साथ ही जाना ठाक समझता है।

उसने अध्ययन का क्रम जारी है। वह कितना पढ़ता है, उससे अधिक पढ़ता है। अपनी कमचौर साथियों के

सहायता करता है। क्या होगया है। उसे? अमिताभ न रुकना जानता है, न प्रमाद करना। उसने जैसे अभी से जीवन का लक्ष्य स्थिर कर लिया है। सेवा सहायता उसके मनोरजन के मुख्य कार्य हैं।

कान्तिदेव सब विषयों में कमजोर है। गुरुजी—बार बार उसे अधिक अभ्यास के लिए प्रेरणा करते हैं। यह मोला, अच्छा छात्र है पर उसे पाठ कम स्मरण रहता है। पर वह अमिताभ ही है जो उसका साथ बना हुआ है। अन्य सहपाठी उसका मजाक उकाते हैं, उसे तग करते हैं, पर अभिन उसे बौद्धारों से बचाता है,। सदा उसके साथ रहने की चेष्टा करता है। उसने भूले हुए अभ्यास को बार बार स्मरण करवाता है। शूल काय होनेसे जब उसका काम कम हो पाता है तब अमिताभ उसमें भी उसका साथी बन जाता है। जब वह वागवाण्याका शिकार होता है, अमिताभ सूझ-बूझ और नम्रता से, बिना किसी पर प्रहार किये रक्षा करता है। और अमिताभ का कोद अभिन नहीं। कान्तिदेवके लिए जो वह है वही वह सबके लिये है समानरूप। हृदय की पूरा सचाई के साथ। प्रति दिन का उसका यहाँ क्रम है, यही चया है। ऐसा वह है। ऐसाही वह रहता जा रहा है।

पर हों प्रभाकर भी है, अत्यन्त,

मेधावी, कुशल, बलिष्ठ, कार्य तत्पर, गुरुमेवानिष्ठ, गुरुप्रिय, स्व विषय पारगत्। इस प्रभाकर की अपनी टोली है। वह उसका सेनापति है वह उनकी गुरु ताड़ना से रक्षा करता है। वे सब उसकी सेवा करते हैं उसने आदेश की प्रतीक्षा करते हैं। जब जब अवसर आये हैं रघु, कौमुद, नदन, पीछे सब की सेवा महायना उसने की है। और प्रभाकर ने उनकी सपर पृच्छी है उनसे दोषोंके लिये डाटा है और रोगों के कारण दूँवने की चेष्टा की है, और यहाँ उद्देश्योचा है, और वह अमिताभ है जो इनकी ज्यादातर बिनका सामना उसे आये दिन करना पड़ता सह जाता है हँसकर भूतजाता है, यह सदा ऐसा करता है, सदा करता रहता है। उसकी भर्हि टेडी नहा होती, उसके शिरपर बल नहीं आता, उसकी आर्षे भरभराना नहीं छोड़नी, उसका मन सेवा सहायता में मुँह नहीं मोड़ता। ऐसा वह बना हुआ है और रहगा, ऐसा है उसका दृढ़ निश्चय।

पर प्रभाकर उससे डर करता है, रघु कमी उसे व व-यु आगत अटवी की महनता में छोड़ आना चाहना है। कौमुदकी तो तीव्र इच्छा रही है कि फल तोड़ते समय अमिताभ ऊँचाई से गिरे, उसकी टांग टूटे और वह हँसे। नदन सोचता कि अमिताभ किसी दिन नदीके प्रवाह में अन्तर्य वह जायगा। या कीई

मगर मच्छ उसका अग्रश्य भक्षण कर लेगा। और यदि ऐसा नहीं होगा तो वह स्वयं किसी दिन उपरे से गहरे पानी में उठे सींच कर उस पार निकल जायगा। और धीरे सदा उसकी कम जोरियों, छिद्रों और दोषों की ताप म रहता। वह किसी दिन इन्हें पा-जाता तो उसे इतनी प्रसन्नता होती कि रक को कुंजर के कोप मिलने पर भी शायद न होती, और उसे तो जैसे स्वयं हा मिल गया हो।

अमिताभ था, प्रमाकर था, और ये सब थे, गुरुकुल का जीवन कम चल रहा था।

सो एक दिन पव-स्नान आया। आचार्य और कुलपति के साथ सब बड़ गंगा-स्नान को पहुँचे। भीड़ अधिक थी। गुरुकुल के छात्र मंदिर में स्थित पाँच शाला में ठहरे थे। वहाँ की ऊँचाई से गंगा माता के दर्शन होने थे। प्रातः काल का समय था। अमिताभ छत पर से गंगा माता की मनोहर साकार प्रतिमा देख लुभा रहा था। उसने देखा उसने अनेक साथी नदी में किलोलें कर रहे हैं, तैर रहे हैं, सींच खांच रहे हैं। पर यह क्या न-दन धारा के मध्य प्रवाह की ओर कुछ साथियों के साथ निकल गया है। वह माता के वक्ष पर चढ़ा उस पार जा रहा है। अमित देख रहा है, ऊँचाई के कारण उसकी दृष्टि बड़ी

ध्यापक विस्तार पृथक् हो गई है। वह देग रहा है, तहाँ तक देख सकता है। उसने एक मगर को तटा का पीछा करते देखा। तटा को कोई ध्यान नहीं। उसके साथियों में स कुछ ने उसकी लम्बी टाँगों को दख लिया है। वे भाग रहे हैं। न-दन की उर्ध्व कुछ सुभ नहीं रही है। और वे न-दा के लिये अपने प्राणों की बलि देने को प्रस्तुत तहाँ। अमिताभ ने देखा। उसने स्थिति की गभीरता को समझा। अब समय शेष न था वह छत स ही गंगा माता की धारा में कूद गया। कुछ समय तक तो उसका पता न था। वह अब पानी से ऊपर दूर पर निकला है न-दन धबका रहा है। मगर से दूर भाग रहा है। अब मगर ने न-दन के धारों पर की पकड़ लिया है। अमित मगर के पीछे है। उसने उसे ललकारा। मगर ललकार मुनकर सहम गया है। वह न-दन को सींच भागना चाहता है। अमित ने उसे रोक लिया है। उसके पैरों को पकड़ लिया है। वह उसे नीचे उसने पेट स चोटें कर रहा है। मगर दो तरफ से पिंचा रहा है। वे तीनों दूमेरे तट की ओर पहुँच रहे हैं। कम गहरे पानी में मगरराज वाजुल हो गये हैं। अब वे न-दन स अधिक अमिताभ पर कुपित हैं। अमिताभ उसकी मनोदशा को समझ गया है। उसने न-दन को झटका देकर भाग

जाने को कहा है। नन्दन ने ऐसा ही किया है। वह भागना नहीं चाहता, पर प्राणों का मोह। कृतज्ञता के नियमों को तोड़ वह आगे बन् किनारे पर पहुच गया। अब अमिताभ ने मगर को पीछे के पैरों से एक ओर ठेल दिया है। इसके पहिले कि वह पीछे मुड़े। अब वह भी किनारे पर है। धक गया है। बेहोश सा होकर गिर पड़ा है।

फिर एक दूसरे दिन की बात है। वर्षों बाद गुरुकुल के छात्र तीर्थाटन को निकले हैं। उन्होंने काशी देखी है। वे मथुरा देख चुके हैं। वे शिवा दर्शनार्थ उज्जयिनी की ओर चल पड़े हैं, उनमें आनन्द, उत्साह और उमंगें हैं। साल दो साल में वे यहस्थ जीवन में प्रवेश करेंगे। एक महान गौरवशाली राष्ट्र के नागरिक होंगे तपस्या की आच में खरा सोना बनकर वैभवा और लोकव्यवहार की सीमित परिस्थितियों में अपने को सुखी और सन्तुष्ट समझेंगे।

मार्ग त्रिशाटवी में से होकर जाता है। वे समवेत स्वर में गाते पञ्चिष्य होकर जा रहे हैं। पाथशाला अभी दूर है। स्या हो रही है। उन्हें शीघ्र गतय स्थान पर पहुँचना है। गुरुजन पीछे रह गये हैं। और वे निश्चित, पुरुषार्थी, निर्भय, भारतीय नवजुमार हैं जो अहि में वृद्ध सकते हैं। अष्टुधियों को पार करने का हौसला रखते

हैं। आज वास्तविकता की छाती को भी गहन अरण्य के पार कर रहे हैं।

आचार्य ने कुछ दूर पर एक सिंह शावक को ऊँची चट्टान से लुढ़ककर नीचे गिरता देख लिया है। अब उनका दयाद्र मन नहीं मानता। वे जानते हैं पास ही वहीं सिंह परिवार भी अवश्य होगा। उन्होंने सदयोगियों से आगे बढ़ने का आग्रह किया है। और वे उस सङ्घ में उतर रहे हैं उनके सहयोगी पहले तो स्तम्भित हो खड़े रह गये हैं पर पीछे सतकता के साथ कुछ दूर पर उनके पीछे हो लिये हैं। उन्होंने टोली को बचने का आदेश दे दिया है।

आचार्य सिंह शावक के निकट पहुच चुके हैं। वह चेतनत्व हीन पड़ा था। गुरुजी ने उसे श्रौपधोपचार द्वारा सचेत किया है। सचेत होते ही अपने को मानवकर स्पर्शित पा वह खीभ उठा है। दहाड़ उठा है। आचार्य को खरोंच चुका है। उसकी मा जो उसे बूढ़ने निकट थी, उसकी धीव को मुन चुकी है। वह उसी ओर लपकी है। पर मीड भम्भड़ को देख कर रुक गई है। सिंहराज भी दहाड़ मारता था पहुँचा है। वह गोल पर टूट पड़ना चाहता है, पर अग्नि शिलायें उसे भयभीत कर देती हैं। अब उनका शिशु उन्हें मिल गया है। व लौट रहे हैं। आगे एक गहरीमें क्षिप्त गये हैं। तीर्थशास्त्र अपने माय पर शीघ्र आगे बढ़

रघु थक गया है। लंगड़ा गया है। सब श्रस्त-यस्त हो आगे बढ़ रहे हैं। सब साहसी कुछ प्रवृत्तावस्था से भयभीत हैं। रघु पिछड़ जाता है। त्रिप्रगति अमिताभ भी पिछड़ जाता है। वह रघु के भी पीछे धीरे धीरे चल रहा है। वह रघुकी दयनीय परिस्थिति को समझ गया है। भयभीत रघु अमिताभ के पीछे हो जाने से सभल गया है। उसका शीथिलन कम होगया है। भाङ्गी में दूर सिंह बहाइता है। रघु शक्ति बटोर दीइकर साधियों में मिल गया है। और वह अमिताभ निभय मद गति से चल समूह में मिल गया है।

(३)

पद्मनाभ ने देखा अब अमिताभ गार्हस्थ्य जीवन म प्रवेश कर रहा है। इच्छा तो उसकी सारा जीवन ही गुरु कुल में यतीत करने की थी किन्तु घर पर माता का स्वगवास हो गया था। पिता जीवन की दौड़ में थक गये थे। उन्हें अतिम लक्ष्य अमित को मार सोंपने ही में दिखाई देता था। और उसकी घर धापिसी के पहले ही उहोंने उसके विवाहाप कया नलाश ली थी।

अमित को गुरुकुल छोड़ना पड़ा। घर जाना पड़ा। रहस्यी समालना पड़ी। विवाह करना पड़ा। जम जात सयासी की गार्हस्थ्य जीवन के प्रवेश द्वार पर भाया के सय बधन मिले, मोह मिला।

और अब पद्मनाभ ने देखा निर्मोही अमिताभ को गार्हस्थ्य शकट में मोही बना देला। वह पत्नी को चाहता था या नहीं इसे तो पद्मनाभ अभी तक तहां समझ पाया, पर पत्नि की प्यार करते, उमकी आर्कांक्षाओं को पूरी करते भी उसने देला। अमित अपने बचपन से ही शिशु बालक प्रिय था। उसको ये प्रभु के बरदान के समान, ये प्यारे थे। पर स्वत इनकी आर्कांक्षा से रहित था पर उसका विवाह हुआ था, उसकी पत्नि थी। ससार की स्वाभाविक गति में वह पिता बना और जो यह क्रम चला सो चलता चला गया। उसने अपनी सतति को भरपूर प्यार दिया। अपना विकास दिया। अपनी आर्कांक्षाये मेट की और इसप्रकार वह जीवन क्रम में आगे बढ़ता रहा। पीजरे मेंबद पत्नी के समान पड़ पड़ाता रहा।

राष्ट्र की पुकार आई, वह सैनिक बना। समाज ने उसे कसा वह सोना निकला। मन ने नागरिकता का तकाजा किया। उसके समक्ष उसने अपना सिर मुकाया। काम में आग शोहरत म पीछे वह अपनेको टेलता रहा

एक दिन एक साधु आया। पानी म भीगा, ठंड से ठिठुरा उसने अपना कम्बल उठाया और उस साधु को दे दिया। पत्नि चाखी, नाराज हुई, समझाया। पर अमिताभ ने इसीबात पर

ठह, बिना कम्पल निकाल दी।

उसके मित्रों ने बसंतोत्सव मनाया। अमिताम भी शामिल हुआ। उनमें एक बाहरी मित्र भी मिल गया, वह छुट गया। अब क्या करें वे? कौन सहायता करे उसकी। जयन्त महाराजको पुत्र का पशोपवीत करना था; मुनेरसिंह को अपनी कन्या का विवाह। अनन्तदास को बाशि-वार्थ—विदेश जाना था। और अमित को—उसे तो कुछ भी नहीं करना था उसके पिता की एक निराली थी—स्वर्ण-मुद्रिका। इसलिये अमितने जानना चाहा मित्रका कष्ट उससे दूर हो सकता है क्या? मित्र निहास होगया। वह उसका मूल्य लौटा देगा। वह मुद्रिका उसके मित्र के साथ चली गई, फिर कभी वापिस नहीं लौटी।

और उसकी पति ने कहा देखो। म क्या समाज में नंगी रहूँ? और अमिताम पति को स्वर्ण से ढंक्ने म छुट गया। उसने न दिन देखा १ रात, न मुख देखा १ शांति। न उसने मित्र देखे न मनोरंजन। पति की लालछा सुरक्षा के समान बढी गई और वह धरती को रसाता रहा। अब उसकी पति स्वर्ण मटिव है। पर सद्रुप नहीं। अमितामने पीछे फिर कर देखा वह छुट गया है, भुलस गया है, उसने पति की ओर देखा, सोचा वह मुस्करा दे। प्रेम और प्रणनाश की एक छल से ले। पर पति की गीहों में

वक्रता, वाणों में कटुता और आचरण में निर्ममता थी। और मृगराज का कीदक अमिताम एक बारगी ही सहम गया, भाग चला। माया जहाँ तक उससे भागते बना। पर दूर चानर उसने सोचा उसकी संता। उसका मार्गावरोध करने लगी। जिनदास ने कहा बापू में क्या करूंगा? अजितदास ने कहा, बापू इतने निर्मम न बन जाओ। सुशीला ने आँसों में आसू भर भीनता में अपना भविष्य दिखाया। काति का भोला मुत्तफा, निर्मालू की निरीहताने उसके हृदय को कचोटा। और अमिताम अब हका। पीछे लौटा। मित्रों ने मजाक उड़ाया। पति ने भत्सना की, 'यग वाणों से विद्व किया। पद्मौषियों ने अपने वार किये। पद्मौषियों ने काति यों ने देला और कायरता के आरोप लगाय। अमिताम ने देला, चारों ओर देखा। उसने अपनेसे कहा, ठीक है। मेरा वक्ष निरवक्ष है। आने दो तीरों को। 'धीर आये' उन्होंने अपना काम किया। अमिताम चीना तान खड़ा हो गया।

रामदास ने कहा "अमिताम, पागल १ बने। धन कमाना हो तो यों कमाओ।" सुशाकरने मामदश १ करते हुए कहा। "अमित बापू तुम भी क्या सत्य और इमानदारी के पीछे हाथ धोकर पड़े हो। जीवन और विश्व में "असत्य" ही सबसे बड़ा 'सत्य है, । 'व्यावहारिकता ही सबसे बड़ी प्रामा

शिकता है।" और चक्रधरने कहा "भाई दवे दवे तो इस शताब्दी में काम नहीं चलेगा। आगे आओ, चिल्लाओ, चीखो,। तमी कीर्ति के वितरक वे महा प्रभु तुम्हें अपना चर देंगे।" और लोग अमिताभ को मिले। किसी ने बड़ों की बातें की, किसी ने शक्ति सम्पत्तों की। पर यह अमिताभ हैं, जो अंतरमुख है। उसने चारों तरफ फीकापन है। वह जान गया है, उसे जाना है। और उसे इसीप्रकार जाना है। इसीलिए यह जा रहा है। उसका जीवन बही है जो था। उसने दिया ही दिया, और जब लेने का अवसर आया उगे सार द्वार बंद मिले। उसे उठी हुई महफिल मिली उसने सेवा की, साधना में बह गला।

अब पञ्चनाम और अमिताभ ने आत्म-बल्याण विश्व कल्याण का मार्ग पालिया है। नगर उसकी सेवा का क्षेत्र है, अरण्य उसकी साधना का नगर में अब उसका कोई स्थान नहीं है, अरण्य में एक छोटी टूटी कुटिया। नगर उसकी क्रिया शीलता का प्रतीक है। अरण्य उसके चिरतन सख्यों की शोधशाला। अब उसने जीवन के रहस्य को, विश्व की गुत्थियों को, साकेत, निर्वाण, मोक्ष को समझ लिया है। उसने अंधकार में प्रकाश प्रकाशमें अंधकार की परिधियों को देख लिया है। वह है और सारे विश्व के

एव उससे हाथों में है। वह अब जैसे हलका होगया है, ऊंचा उठ रहा है। है। उसकी दृष्टि व्यापक होगई है। जैसे सब उसके अपने हैं। वह अब साधु हो गया है, पूण मानव होगया है।

अमिताभ अब भ्रमण को निवृत्त है। युग चक्र फिर गया है। वन्य तो जैसे उसके शरीर पर हैं ही नहीं, क्यों कि उसने कभी चिन्ता नहीं की, इसी लिये सबका पहचाना—वह सबका अपहिचाना हो रहा है। वह चाहता है कोई उसे देखे न, पहचाने न, वह चोर सा बड़ता है। वह तो अपना सेवा स्थान, कर्म स्थान ढूँढ रहा है, जिसे अन्यो ने त्याग दिया है।

नगर में हरिजन आंदोलन चल रहा है। इकटालें हो रही है और वह छगू, मगू, कुक्कू, रमिया, लच्छी की कुटिया में घरों में पहुँचा है। छगू का पैर लँगड़ा गया है। वह प्रतिदिन मालिस करने आता है। मगू को फोड़े ने पाव कर दिया है, वह भरहम पड़ी कर जाता है। कुक्कू की नहीं विटिया भरणासन है वह उसकी सेवा सुभ्रूपा कर रहा है। उसे धीरज बधा रहा है। रमिया का पति शराम पीकर उस पर अत्याचार करता है, तब अमित उसे समझाता है। लच्छी सड़ रही है, उसने पास कोई नहीं जाता पर अमिताभ उसे स्वच्छ रखने की भरतक चेष्टा करता है।

आज्ञा अमिताम मजदूर बस्तियों की ओर निकल गया है। यहाँ वहाँ उत्तेजित धानावरण है। महामान्य नेतागण आये हैं और उन्होंने उनको सच्ची स्थिति बनाकर सभ्य कर दिया है। उनमें प्रतिकार की भावना भर दी है। उाकी, उनसे बालकों की शिक्षा का प्रबंध कर लिया है। उनसे स्वास्थ्य के लिये व्यायामशालाएँ स्थापित करवा दी हैं। पर लछु मा के कमरे में तेल के न होने से आन अवेरा है। मुलमन को आन मांगे से ज्वार भी नहीं मिली है। और वह भूली ही सो गई है। हरि की पत्नी बीमार है। अस्पतालों ने जगह नहीं दी है, क्योंकि उसके सरोने अनेको पहले से स्थान पागय है। अब दयालु सरकार, बजट बद्ध सरकार अब अस्पताल बनवायेगी तब उसकी पत्नी को शायद स्थान मिल सकेगा। गोपाच अपनी भोंपड़ी में कराह रहा है। सब निकलने हैं पर यने माँदे हैं, देखते हैं बोलते हैं, सेवा सहायता करना चाहते हैं, आगे बढ़ जाते हैं। और अमिताम है जो पसे अधकार में कमी कमी अपने प्रकाश की किरणें छोड़ जाता है। चुपके स शान्ति से, बिना पहिचाने। और वह मध्य वित्त लोगों में जाता है। वहाँ उम टाला पन, अभाव दिखता है, उसमें वह अपने को भर देता है। इनमें कोई उसे अस्छा कहता

है कोई सुरा। और वह अमिताम है अभाव रहित अशुलिकाओं की ओर भी निकल जाता है। तब वे सहम पाते हैं, डर जाते हैं, शक्ति होजाते हैं। कोई उसका मजाक उड़ाता है। कोई उससे घृणा करता है। कोई उसे अपना शत्रु समझता है। पर अमिताम है जो नगर की गदगी साफ करता रहता है।

और अब वह अपनी अरण्य स्थित कुटिया में है। मृग छौने उससे हिल गये हैं। शराक उसकी कुटिया के निकट आ जाते हैं। चिड़ियों चं चं करती अमिताम के सिर पर मँढराती रहती हैं। बलरव शीन पत्नी उसके आस पास हैं। पहिराज और मयक अन्यत्र चले गये हैं। मृग हैं, दूर पर मृगराज भी, पर निवेर। स्वाभाविक नुषा से अधिक क्रिती को नहीं चाहिये। मुदर सरोवर पर सुरम्य प्रकृति के वक्ष पर किलोलें करने हैं।

और काइ पाथ जवतब भटकर अमिताम की कुटिया में आ जाता है तब, सवा, शुभ्रुग और आतिष्य पाता है। उसकी कुटिया सबकी कुटिया है। रथास्टोंने उसमें प्यास बुमाइ है, दूटे पहिये आर टूटी टाँगे टोक की हैं। सैनिकों और सेनापनियोंने अपनी क्रूरताओं को इसमें भूला है, गलाया है, और वे नितरकर यहाँ से निकले हैं। गरा थिप भी यही से गुजर है, विजयी भी पराजित भी। विजेनाओं के मान इसके

निकट मोम के पुतले बनाई हैं और पराजिनों की लम्बाने यहाँ आसरा पाया है।

और अमिताभ है आज गौरी शरर के समान स्वच्छ, निरभ्र, सिर उटाये। पर अब वह गलनें लगा है। उसे गलनाही है। वह मानव ही है। वह सम्पूर्ण होगया तो क्या, प्रकृति के नियमों का अवहलना करना उसका ध्येय नहीं। प्रकृति मयात विमाको आमलान किया वह प्रकाश पुन

बना ! वह सब मं समाया। सब उसमें ममाये।

सो अमिताभ एक दिन पूरा गल गया। बिन्दर गया। 7 किसीने उसका अभि सत्कार किया, न उने समाधिस्थ। तब उसके चिर चरचर पक्षिराज, वृमिराज आदि आय। उन्होंने महोत्सव मनाया। अनशिष्ट पृथ्वी माता पर गिलर कर समा गया, कपूर सा उइ लोको लोको में ग्यात हों गया।

-४-

अहिंसा का स्वरूप-

प्रमाद व कारण द्रव्य तथा भाव प्राणों को किसी प्रकार का श्वाधात पहुँचाना हिंसा है। २ प्रमाद का अर्थ है कर्तव्यविम्भृति। प्रत्येक जीव का कतव्य है सम्यग् ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र्य रूप आत्मीय गुणों का विनास। जीव का अपने स्वभाव की भूलकर क्रोध आदि कषायों के बशीभूत होकर प्रवृत्ति करना प्रमत्त योग है। प्रमत्तयोग के द्वारा किसी को कष्ट पहुँचाना हिंसा है। इसके दो भेद हैं- द्रव्यहिंसा और भावहिंसा। किसी को कष्ट पहुँचाना या मारना द्रव्य हिंसा है। दूसरे के प्रति मन में बुरे विचार आना भावहिंसा है। भ्रमण परपरा में भावहिंसा के त्याग पर विशेष जोर दिया गया है। जब मनुष्य असत्य बोलता है, चोरी करता है या अन्य किसी प्रकार की कुप्रवृत्ति करता है तो उसकी आत्मा में अशांति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार वह दूसरे की हिंसा करने से पहले अपनी हिंसा करता है। इसलिए किसी के प्रति राग या द्वेष आदि का उत्पन्न न होना ही अहिंसा है और उनका उत्पन्न होना हिंसा है। यही आगमों का सार है। जो व्यक्ति अपने आत्मविकास रूपी कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करता, राग और द्वेष में नहीं पड़ता, उसके हाथसे यदि प्राणिवध हो भी तो भी हिंसा नहीं मानी जाती।

धर्म की देन

पं माखनलाळजी चतुर्वेदी

जैन धर्म का प्रारम्भ चाहे भगवान पार्श्वनाथ से हुआ हो या भगवान महावीर से, धर्मों के विश्व परिवार में जैन धर्म ने अपना हिस्सा अत्यंत श्रेष्ठ स्तर पर उपस्थित किया है। पृथ्वी के निर्माण की तिथि बोटि वर्षों में लगाई जाने मानव का निर्माण तिथि लक्ष-लक्ष वर्षों में डूबी जाने, और मानव सृष्टि की तिथि इतिहास और प्रागैतिहास की धारा के दोनों नानारों के बीच सहस्र सहस्र वर्षों से बहती आने के पश्चात् भी, धर्मों की आकलनशीलता के प्रति विश्व की मानव भावना नहीं बच्चों जैसी नहीं बनी हुई है। पूर्वी गोलार्ध के एशिया महाद्वीप में धर्म भावना का महान परिवार निवास करता है। किन्तु हमारा बचपन यह है, कि जो हमारे धर्म में है, यह सर्व श्रेष्ठ है और सब कुछ अच्छा है, और जो हमारा धर्म नहीं है, वह तो है य पर पर एन सह, यानी जो पराया सो पराया। उधर पश्चिम में, धर्म की भावना का अर्थ है ईसाइयत की भावना यदि किसी धर्म की अच्छाई की जांच पश्चिमी विद्वान करें तो ईसाइयत का

मान दड लेकर मानों ईसाई धर्म के पहिले धर्म भावना ही पृथ्वी पर रही हो इसमें धर्मों का अपराध कम, मानव का बचपन अधिक है जब जब धर्मों से ऊंचे उठकर धर्मों पर मत देने का दानव ने निरपेक्ष प्रयास किया, उसे नास्तिक कह दिया गया इस तरह, दानव की धार्मिक उकीणता के कारण विश्व पर और अपनी पवित्र से पवित्र रचना पर अपना स्पष्ट मत देनेवाले विश्वमानव के निर्माण में बहुत बिलम्ब लगता आया है, और आज भी, जब कोई धर्म पर मत देता है तो चिन्तित होता है और जिस तरह अवित्र यज्ञ के प्राथम का सिंह आश्रम की अहिंसा वृत्ति के कारण आने ही पत्रों से डरता था कि कहीं वे किसी को गड़ न जायें, उसी प्रकार विश्वमानव धर्म पर मत देने से डरता रहा है वह खुला अनुयायी और खुला शत्रु होकर तो मत देता रहा, किन्तु मत मथन, मत निश्चय, मत सहिष्णुता, मत प्रकाशन और मतानुकूल बनने के चिन्तनपूर्ण आधारों पर मत देने से बचता रहा है

विश्व ने इनका परिणाम भी भोगा है। धर्म राज्य संचालन की गदियों

से उतारा गया, धर्म जीवन संचालन की दैनन्दिन परम्पराओं से घटित किया गया, देव मंदिरों और अधिकांश देव मंदिरों में बुद्धिजीवियों की श्रद्धा बढ़ती गयी, और देवमंदिरों के वातावरण में बुद्धिजीवियों का प्रतिबिम्बित बलवान होना गया।

धर्मों के पास एक धारणा बलवान है उनका प्रभु आकाश के अप्रत्यक्ष में कहीं निवास करता है, जिसकी सत्ता अणु अणु पर यात है और जिसका अवतार, जिसका पुत्र, यदायदाहि धर्मस्य स्वानिभवति भारत अभ्युत्थानम् धर्मस्य नदात्मानम् सृजाम्यहम् की या की सी कोई पानि कहकर या कोई बात सोच कर पृथ्वी पर आया करना है।

इस सम्पूर्ण भावना ने प्रतिकूल एक विद्रोह हुआ, वह भारत वर्ष में यह विद्रोह ब्राह्मणों की परम्परा के प्रतिकूल क्षत्रियों का था एक विद्रोह क्षत्रियों की परम्परा के प्रतिकूल ब्राह्मण ने भी किया था। पुराणों में कथा है कि भगवान परशुराम क्षत्रियों की उद्दहना के प्रति कूल हो गया। उन्होंने एक के बाद दूसरे राजा का नाश प्रारम्भ कर दिया आज भी भाई कटैयालालजी मानिकलालजी मुझी जैसे तेजस्वी ब्राह्मण भगवान परशुराम के उस तेज की प्रशंसा करते हैं किन्तु मेरे अपराध में क्या कटू, मैं इस घटना का तेज समझ नहीं पा रहा

क्षत्रियों के उपकरण पानी उल्टा होकर भगवान परशुराम ने क्षत्रियों के प्रतिकूल विद्रोह किया, और फिर, महाबाहू रामचन्द्र नामक एक क्षत्रियों के सामने ही द्वार खार्ई विद्रोह के समस्त समाज या जाति जिन उपकरणों को प्रदत्त करती है, विजय प्राप्त होने पर उनके परिणाम विरोधी समाजों को प्राचीन समाजों में परिवर्तित कर दिया करते हैं। जिस तरह आज का शोध, आज का आविष्कार बनकर भी कल का साहित्य और परसों की रुढ़ि कहलाने लगता है, उसी प्रकार आज का विद्रोह कल का धम कहलाकर परसों जैसे ही बधनों में हम बाध लिया करता है जैसे बधनों के खिलाफ हमारे विद्रोह किया था।

सा, जैसा कि मैंने निवेदन किया जैन धर्म ब्राह्मणों की रुढ़ि परंपरा और यज्ञों की इस भावना के प्रति क्षत्रियों का विद्रोह था इस विद्रोह ने ससार को एक महान वस्तु का दान किया उसने मानव का प्रभुसत्ता को स्वीकार किया, उसने प्रभु को आसमान से उतर कर आनेवाला और अप्रत्यक्ष मिलीन हो जाने वाला मानने के बजाय प्रगत को यह संदेश दिया कि हम मानव ही ऊंचा उठकर तापकर उतारक हो आया करता है यदि प्रभु प्रथम उपलब्ध न होते तो शायद को नहीं मानता कि माक्स के पक्षीचीव

पहिले किसी ने ईश्वरत्व की भावना के खिलाफ मानव की प्रभुसत्ता को ईश्वरत्व का नाम दिया तब, यह भावना धर्म क्यों कहलाई ? इसके नाम पर प्रायनायें क्यों हुई ? इसके लिये प्रयोगों की रचना क्यों हुई ?

इसका पहिला कारण तो यह है कि भारतीय स्वभाव सदा धर्म निरपेक्ष रहा है । उसने विश्व की धर्म भावनाओं का सदैव खुले हाथों स्वागत किया है जिस समय यूरोप या पूर्वी एशिया से आजा भी इस्लाम और मसीही धर्म के खिलाफ अन्य धर्म सस्थाओं का निर्माण और सार्वों की तादाद में अनुयायियों का मिलना दुर्लभ है, भारत में जर दोस्य धर्म के पारसियों की सम्पूर्ण आभय दिया गया जैन और बौध धर्म का खुले विद्रोह में उदय हुआ, कन्फ्यूशियस धर्म के चीनी यात्री यहाँ की धर्म निरपेक्षता और समस्त धर्मों के प्रति सहिष्णुता की प्रशंसा करते रहे, और इस्लाम तथा मसीही धर्म ने भारत की इसी भावना से लाम उठा कर अपने अनुयायियों की तादाद करोड़ों और लाखों की । इस भारतीय धर्म भावना की उच्चता में ही जैन धर्म जैसे सवया नवीन धर्म का उदय हो सकता था तो हुआ ।

यह सच है कि प्राचीन युगों में विचारों के परिवर्तन के लिये धर्म भावना और सम्प्रदाय निर्माण का ही आभय लिया जाता था । किन्तु साथ ही

यह भी सच है कि धर्म भावना ही एक ऐसा तन्त्र है जो अनुप्य को आत्म सन्न होने से रोकता है वह मानव की ईमानदारी का उच्चतर आधार होता आया है और उसकी समर्पण भावना और दोनों के प्रति आत्म स्वीकृति के वैभव को मानव में जगमगाता और उभारता आया है । प्रार्थना पुरुषार्थ को क्रूर और उद्वेग होने से और भद्रा को कायर होने से रोकती है इसी लिये साधकों और साधिकाओं भयों और भवशिकाओं को आधार बनाने के परचात भी जैन धर्म के मानव का तीपकर के रूप में विनाश पूजा और प्रार्थना से परिवेष्टित किया गया है यहाँ तक कि इस देश में रहनेवाले २८ करोड़ ६२ लाख हिन्दुओं के बीच जैनों की तादाद ही में एक भी नहीं के केवल १५ लाख के लगभग हैं किन्तु हिन्दु समाज और जैन समाज के धर्म प्रयोगों को एकत्रित करें और तराजू के तौल के पत्तों पर रखें, और गुण और गरिमा के विवेचन में न पड़े, तो दोनों के तौल में मुझे सदेह है कि ३० करोड़ संख्या के जातिग्रन्थ १५ लाख संख्या के जातिग्रन्थ से तौल में भारी नहीं होंगे इतने धर्म प्रयोगों का निर्माण हुआ कि बिनम तक, दर्शन और कथाओं ने स्थान पाया

यू तो अहिंसा हिन्दू धर्म का महान आधार है और यह धर्म ही कैसा, जिसका आधार अहिंसा न हो ! जो

पहिले किसी ने ईश्वरत्व की भावना के खिलाफ मानव की प्रभुसत्ता को ईश्वरत्व का नाम दिया तब, यह भावना धर्म क्यों कहलाई ? इसके नाम पर प्रार्थनायें क्यों हुईं ? इसके लिये प्रार्थनों की रचना क्यों हुई ?

इसका पहिला कारण तो यह है कि भारतीय स्वभाव सदा धर्म निरपेक्ष रहा है । उसने विश्व की धर्मभावनाओं का सदैव खुले हाथों स्वागत किया है जिस समय यूरोप या पूर्वी एशिया से आग भी इस्लाम और मसीही धर्म के खिलाफ अन्य धर्म सस्थाओं का निर्माण और लाखों की तादाद में अनुयायियों का मिलना दुर्लभ है, भारत में जर दोस्य धर्म के पारसियों की सम्पूर्ण आश्रय दिया गया जैन और बौद्ध धर्म का खुले विद्रोह में उदय हुआ, कन्फ्यूशियस धर्म के चीनी यात्री यहा की धर्म निरपेक्षता और समस्त धर्मों के प्रति सहिष्णुता की प्रशंसा करते रहे, और इस्लाम तथा मसीही धर्म ने भारत की इसी भावना से लाभ उठा कर अपने अनुयायियों की तादाद करोड़ों और लाखों की । इस भारतीय धर्म भावना की उच्चता में ही जैन धर्म जैसे सध्या नवीन धर्म का उदय हो सकता था सो हुआ ।

यह सच है कि प्राचीन युगों में विचारों के परिवर्तन के लिये धर्म भावना और सम्प्रदाय निर्माण का ही आश्रय लिया जाता था । किन्तु साथ ही

यह भी सच है कि धर्म भावना ही एक ऐसा तन्तु है जो मनुष्य को आत्म शत्रु होने से रोकता है वह मानव की ईमानदारी का उच्चतर आधार होता आया है और उसकी समर्पण भावना और दोनों के प्रति आत्म स्वीकृति के वैभव को मानव में जगमगाता और उभारता आया है । प्रार्थना पुरुषार्थ को क्रूर और उदंभ होने से और भद्रा को कायर होने से रोकती है इसी लिये साधकों और साधिकाओं भवणों और भवणिकाओं को आधार बनाने के पश्चात् भी जैन धर्म के मानव का तीर्थंकर के रूप में विनास पूजा और प्रायना से परिवेष्टित किया गया है यहातक कि इस दश में रहनेवाले २८ करोड़ ६२ लाख हिन्दुओं के बीच जैनों की तादाद सौ में एक भी नहीं थे केवल १५ लाख के लगभग हैं किन्तु हिन्दु समाज और जैन समाज के धर्म प्रार्थों को एकत्रित करें और तराजू के तौल के पल्लों पर रख, और गुण और गरिमा के विवेचन में न पड़े, सो दोनों के तौल में मुझे सदेह है कि ३० करोड़ सख्या के जातिप्रथ १४ लाख सख्या के जातिप्रार्थों से तौल में मारी नहीं होंगे इतने धर्म प्रार्थों का निर्माण हुआ कि जिनमें तक, दशा और कथाओं ने स्थान पाया

यू तो अहिंसा हिन्दू धर्म का महान आधार है और वह धर्म ही कैसा, जिसका आधार अहिंसा न हो ! सो

यह विश्वभर के धर्मों का आधार है किन्तु ईसा की महान त्याग भावना के बावजूद जोवन, भोजन, और व्यवहार में अहिंसा का पालन न ईसाई जाति से सघा, न श्रुतियों को तपोपूत परंपरा के अनुकूल सम्पूर्ण हिन्दू जाति से सघा। मुस्लिम जाति से तो सघना ही क्यों था, क्यों किन्तु मगवान बुद्ध के अनुयायियों से भी नहीं सघा हिंसा के भेद प्रभेद करके खाद्य पदार्थों का नियम हुआ, सत्कार म केवल एक जैन जाति ही ऐसी है कि अहिंसा को अपने जीवन और भोजन में उतारने का १०० पीसदी प्रयत्न किया। मासाहार, विश्व म केवल इसी एक धर्म के अनुयायी नहीं करते। और इस तरह इस जाति का जीवन अहिंसा के सम्पूर्ण अनुकूल सिद्ध हुआ। इस तरह इस जाति ने दो बातें विश्व को दी एक तो मानव हा को ईश्वरत्व की कल्पना को आधार बनाया और दूसरे सम्पूर्ण अहिंसा को जीवन और भोजन में न केवल उतारने का प्रयत्न किया बरन् समस्त भी करके दिखा दिया। यहां मैं उस जैन दश न की बात नहीं कहता जिसका प्रभाव ने ही मुझे जैन धर्म के प्रति अधिक आसक्त किया था क्योंकि वह अपने में एक अलग विषय है और विश्व दर्शन के भवति न भवति की समीक्षामें विस्तार से देखने की वस्तु है मेरे जीवन का वैश्याव के निवास करने वाले ब्राह्मण ने अपने

जब दर्शन के उन तन्तुओं को पाता है तो प्यार होता है कि भारत की महान परंपरा में भूषण की तरह जैन दर्शन चमकता है अस्तु यहीं तो इसकी चर्चा करनी नहीं।

किन्तु विश्व मानव हमसे कुछ प्रश्न पूछ सकता है और हमें उधर भी ध्यान देना होगा विश्वके रक्त चूरी तलवार फेंक कर चित्तन और लेखनी में उतरे तब जैन धर्म बना। किन्तु उसके विरम परिणामों से कैसे बच सकते थे? जिन ब्राह्मणों से अधिक तप और त्याग की भावना बढ़ाने का उद्योग किया गया था उहीं तप और त्यागों का पुज बनकर जैन जाति रह गई और देश के शासन और रक्षा के क्षत्रिय तन्तु शतादियों की धम धारा म न जाने कहा विलीन हो गए। क्षत्रियत्व ब्राह्मण को परामित करने गया था और स्वयं परंपराओं से ब्राह्मण बन कर बंठ गया। इसका असर धर्म के विस्तार पर पड़ा हिंसा के चरमत्व से वाणि बोलकर विश्व में महान युद्धों का करनेवाला बौध धर्म पूर्वी और दक्षिणा देशों पर छा गया और अहिंसा को जीवन पर उतारने के सम्पूर्ण प्रयास में जैन धर्म राजभी के महान तेज से वंचित हो गया अत्यन्त प्रतिभाशाली होकर भी अपनी त्याग भावना के जो फल भूमि लिये अभिशाप बनाने ठीक उहीं अभिशापों को जैन जाति ने अपने में दुहरा

दिया। विश्व का धर्म राज्य संचालन की गद्दी से उतारा गया था, भारत का ब्राह्मण राजगुरुत्व के महान गौरव से उतारा गया, और भारत का जैन धर्म, उसी तरह, शास्त्रों के स्वर्ग में निवास करते हुये विश्व की विजय पराजय से निर्वाण पा गया। तब यदि इस महान देश में उस की गणना केवल १४-१५ लाख रह गई तो यह तो होना ही था। आज के भारतीय चितक को, केवल जैन चितक को ही नहीं, अग्रा निस्थान के भारतीय राजदूत विंग कमांडर रूचन्द्रजा तथा उनकी टोड के व्यक्तित्व निर्माण करने में गौरव अनुभव करना चाहिये क्योंकि जैन तत्वों और दशतों को हानि पहुँचना इस देश की बहुत बड़ी हानियों में होगा जैन और बौध धर्मों ने भारत वर्ष को एक महान देन और दी है वह है कला की देन।

मानव के सुकोमल, कलित कूजित मनोभावों को जिसने हमारी धारि पर उतारा उसे हमने कालीदास कहा, और ऐसे कुछ और नाम दिये। किन्तु मानव के मनोभावों को जैन और बौध जातियों ने अपनी कथाओं के रूप में इस देश के भिदि खडों को दोषारों और पत्थरों पर उतार दिया बौध और जैन युगों के बिना भारत वर्ष में मूर्ति कला का वह वैभव न होता जो आज भारत के खंडहरों तक में विद्यमान है मूर्ति कला के हिन्दू जाति के कुछ भेद नमूने भी इस

देश में हैं, किन्तु बुद्ध और जैन लोगों की परंपराएँ मानव मनोभावों को लेकर रंगों और पत्थरों पर उतारने में जितनी ब्राह्मण जितनी विस्तृत, जितनी गहरी, जितनी सकन हुई है यह इस देश के सस्त्रि के इतिहास में मूल्यवान् निधि के रूप में समझनी है। किन्तु जैन हो या हिन्दू, आज तो हम मानो कला के हत्यारे ही के नाम से नेक नाम हो सकते हैं। एक मूर्तिकार मूर्ति का निर्माण करता है अपने श्रुतर में अमर उठने वाले स्नेह भाव की, सौ-सौ सगनों से गूथकर, वह पत्थर पर उतारता है और वह पायाण प्रतिमा किस लिए निर्मित होती है कि सदस सहस मति की मनो कामना उस मनोभावमयी मूर्ति के दर्शन से पूर्ण हो सकती है। रथ पर अड कर और हृदयों के आनन्द से आगे बढ़कर शास्त्रों के मंत्रों से गर्भित वह मूर्ति मन्दिर में आई, और दृढ़ पायाण प्रतिमा के उच्चतर मुद्रा भावों के चरणों पर शत शत राशि समायित कर दी गई। किन्तु कोई इन पूतलों से पूछे कि पूजकों तुम शत-शत यहा हो, किन्तु यह मूर्तिकार कहाँ रह गया जिसकी कि छेनी और नौकी ने यह मूर्ति बनायी? हम जैन हों कि हिन्दू, यह मूर्तिकार अज्ञूत है, वह हमारे धर्म का नहीं है, यह हमारी जाति का नहीं है, यह हमारे मन्दिर में कैसे प्रवेश पा सकता है? और इस तरह विशाल मन्दिर

के पत्थरों में प्रतिमा हीनता गूज उठी तब बताइये मूर्ति और कला की यह
 और हमारी प्रतिमा का चरम सौभाग्य देवत्व परंपरा, पत्थरों के रंगों पर
 हमारा चरम दुर्भाग्य। बाकर मूर्तिकार मानव के सुशोभन मनोभावों को उतारने
 और उस जैसे उपेक्षितों के साथ मंदिर हुये, हम आज के युग में जीवित
 के बाहर विलसता लफ्फा रह गया। रहे तो कहां ? जीवित रहे तो कैसे ।

जग दर्शन

सागरमल जैन 'मौला

चेदना की हलचलों में एक अद्भुत सार देखा ।

चेतना कब तक रही है
 और भी कब तक रहेगी,
 जिंदगी अवसाद होकर
 दुख अभी कितना सहेगी ?

आज क्षण-क्षण पल-पलक में एक दाहाकार देखा ।

आज सदियों की पुरानी
 अतल लय मैंने सुनी है,
 आह की निःसीम साँसें
 एक उगड़ी पर गिनी हैं,

प्रति हृदय के बीच मैंने एक चुभता तार देखा ।

शक्ति तो मुर्दा जगत् की
 भ्राति की बेबस पिपासा
 यो कभी मेरे हृदय में
 स्वप्न की यह क्षणिक आशा,

अब मुझे मल फूट को काटों भरा लाचार देखा ।

जिस हृदय में था अघेरा
 हो न पाता था सवेरा,
 कायरों का एक घेरा
 पाप का दुर्दिन बसेरा,

आज उसी में क्रांति का फूटा फूटा ससार देखा ।

श्रमण-संस्कृति का राष्ट्रीय महत्व

शिवरचन्द्र जैन, सा. रा.

श्रमण संस्कृति का व्यक्तिगत, धार्मिक और पारलौकिक महत्व तो अपार रहा, परन्तु सामाजिक, राष्ट्रीय या दल्लौकिक महत्व कहीं अधिक कल्याणकारी रहा। इसी सबब को आज हमें चर्चा करना है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब तयागत गौतम बुद्ध के बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ तब भ्रमणों के द्वारा ही। जहाँ उनके जीवन में ही अनेक व्यक्ति श्रमण बनकर सारे भारत में फैल गये, वहाँ प्रियदर्शी सम्राट अशोक की यह छीम उत्कठा थी जिसने इन भ्रमणों में एक अपने परिवार को रखा दिया, और इसका ही परिणाम निकला कि बौद्ध धर्म का प्रसार भारत में अट कर विदेशों में फैल गया।

ईसाई धर्म के प्रसारक कौन थे ? ईसाई सत-महात्मा थे। ईसाई श्रमण ही थे जो जले, गले देशनिर्वासित हुए, फिर भी प्रभु ईसा का सदेश लेकर वे पृथ्वी के कोने कोने में पहुँचे। जहाँ एर्य की भी गम न थी वहाँ वे पहुँचे और उन्होंने ईश्वर पुत्र ईसा की दीन बंधुता का ढका बसाया।

हाँ, इस्लाम का मार्ग भिन्न रहा,

यद्यपि ओश-सरोश और कष्ट सहन वैसाही था। जैन धर्म की उप्रति का कारण भी जैन धेष्टि-वग या सम्राट नहीं रहे। वे तप की श्राग में आपने को भुलसाने वाले एकासनी परम श्रौदाय साजु रहे जिन्होंने सब्ध त्याग कर अहिंसा का मार्ग प्रशस्त किया और प्राणि मात्र का अप्रतिम कल्याण युगों युगों तक किया।

अब साचिय रुसी क्रांति का भेध किसको है ? इसमें सदेह नहीं लेनिन, ट्रांसकी सतह के ऊपर या नीचे रहकर सब सचालक रहे, परन्तु रुसी उद्भावक, प्रसारक क्रांति के वे अनेक अगणित रुसी तक्षण थे जो भूखे प्यासे रह, मारे मारे सारे देश में घूमते और बसते रहे। उन्होंने साइये रिया की भयकर गड और जेलों का सामना किया, अपनी हड्डियाँ गलाई, और फिर रुसी जनता में मिल गये। ये तक्षण भी श्रमणों से कम न थे। उन्होंने हा, इनके त्याग शौर्य और कष्ट सहन ने ही रुसी जनता के कल्याण और शान का मार्ग उद्बुद्ध किया। ये अपरिचित रहे, अज्ञात रहे, अपशी रहे, काल के गाल में समा गये। आज उन्हें कोई

वहीं जानता, परन्तु उनका एकसिक्कन रूप के उद्धार का खाद बना।

श्रीर हम अपने युग में आये। हम अपनी स्वतन्त्रता की जड़ में देखें वह कौन सी शक्ति थी, कौन सी सस्कृति थी जिसने हम स्वतन्त्रता दिलाई। उस विश्वव्यव महा विभूति ने किस अद्भ्य शक्ति का सच्य किया जिसने विस्फोट ने जगत प्रख्यात कुटिल साम्राज्यवादी ब्रिटेन को मुटने टिकना दिये। भारत का एक एक दृष्टा जानता है एक महात्मा ने अनेक महात्मा पैदा किये अमर्यों क स्तर पहुंचे हुए अनेक अनेक त्यागी राहर धारी, निस्पृह सेवक पैदा किये, जिन्होंने अपनी बकालातें छोड़ी, डॉक्टरिये छोड़ी, स्कूल, कालेज और जजिये छोड़ी, जिन्होंने अपने बहुमुल्य, प्रिय विदेशी वस्त्रों की होली जलाई और सुदर्शन चक्र संभाला। वैभव को टुकराया, जैलों का वातनाएँ सही, वाग्मणों की वर्षा की बौछारें भेली। पर बाहर क लोगों ने उन दीवानों का मजाक उझाया और फिर भी वे रुटे रह, जुटे रह, तब कहीं जानर हम कह सकत ह कि हम स्वतन्त्र हैं।

अब चाहे आप बौद्ध और जैन धर्मों की सोमाओं में झूटने वाल सेजस्वा साधुओं को अमर्य कहें, परन्तु मैं तो उन रुसा लक्ष्यों और पहले सेम क कांसेसियों का गणना भा हसी लिए अमर्यों में करता हूँ, क्योंकि

उनके सारे गुण हमने पाये जाते हैं।

इन अमर्यों ने राष्ट्र का कितना कल्याण किया। हम प्राचीन युग में जायें। इन्होंने अपनी सरया बढ़ाई, अर्थात् अनेक निस्पृही, त्यागी व्यक्तियों की वृद्धि को, जिन्होंने ससार के वैभवों, परिग्रहों, प्रलोभनों को निलाजलि देकर अवशिष्ट माननों एव प्रहस्या के सौकिक सुवों का भाग प्रशस्त किया। जितने अमर्य बढ़े उतनी सौंसारिक, सौंपत्तिक समस्याए कम हुई। इन्होंने एकासनी वृत्ति धारण कर खात्र समस्या के मुन भाने में, उसके भयकर न होने देने में बड़ी भारी सहायता पहुंचाई। इन्होंने मठों सघों विहारों की स्थापना कर लोक कल्याण के बहुमुली द्वार पोले। और तब कहीं अमर्य सस्कृति की वाप कता से शताब्दियों तक मुल शांति का बरदान प्राप्त होता रहा। इन्होंने बिना अपने नाम या अन्य काति क साधनों का उपयोग किये, वैदिक श्रयिया के समान अपने को देश में लया दिया, और तब ही लोक कल्याण स्रटित हुआ, एक सोमा तक स्थायी बन सका। इन्होंने शासन, शासन संचालन और शासकीय शक्ति सच्य की ओर से अपने को हटा लिया और इसका परिणाम देश के लिए बड़ा शुभ और लाभप्रद रहा।

इसी प्रकार पहले सेम के गांधी महि कल्पेस म उस समय आये जब ब्रिटेन की प्रभुता का आतक सारे

सत्तर पर ह्याया हुआ था । उसे साम्राज्य में कभी अस्तन होने वाले सूर्य का गौरव प्राप्त था, और वह सूर्य मध्याह्न के समान तप रहा था । उसने सामने तब अमेरिका नग य और उसी की सत्ता में अपने को लीन करने की पुनर्मे था । रूप उसके वैभव का लोहा मानना था । जापान उससे डरता था । विश्व में केवल एक जर्मनी या जिसने उसका सामना करने का साहस किया था और मुँह की लारें थी । उस समय भारत में महामाजी का अनिश्वास किया जाता था, उनका मसोल उड़ाया जाता था । उनकी योजना की ओर मग दशन का धमिर्त्रयें उड़ाई जाती थीं । तब ब्रिटिश सिंह की माँद में प्रवेश करने का कार्य उन वीर काम्रेसियों ने किया और पिछले रोमें वालों का माग प्रशस्त और सरल बनाया । उन भागी रय तपस्था और गुल गुलकर भरजाने वाले काम्रेसियों को आज कौन जानता है ? वे ये सच्चे भ्रमण और उनकी तपस्था, सेना, साधना थी जिसने देश को स्वतंत्रता दिलाई, लोक कल्याण के माग पर लाकर छोड़ दिया ।

इसीलिए मैं आप से कहना चाहता हूँ कि यदि हम देश का सच्चा कल्याण चाहते हैं, देश की स्वतंत्रता को अतुल्य रण चिरस्थायी बनाता चाहते हैं तो हमें भ्रमणों का एक समूह पैदा करना होगा, हमें भ्रमण सस्टि का

आदर करना होगा, भारतीय जीवन में उसकी प्रतिष्ठा करना होगी । महात्माजीने यही किया, जवाहरको यही करना होगा । यदि नवाहर यह नहीं करता तो राजनीति की स्वाभाविक कुरूप नीतिता और शासन यंत्रों की कीच भरी सत्ता इस देश को हुवा देगी । नीति केवल नेताओं द्वारा जनता को कोसने और मारों में दबे मानवों से अधिक परिभ्रम की भाग करने से कुछ न होगा ।

अतः भ्रमण सस्टि की स्थापना वृद्धि और प्रसार के लिये उसके आधार भ्रमणों की एफ वृद्धि सख्या हमें पैदा करनी होगी, और यह महान राष्ट्रीय कार्य यदि कोह कर सकता है तो वह केवल तरुणों का ताज जवाहर ही कर सकता है । आज भी उसके आह्वान पर देश का बच्चा बच्चा अपने को न्यूट्रावर कर सकता है । अतः आज की महान राष्ट्रीय आवश्यकता प्रेस-कार्गेंस या घत्तव्य नहीं है, और न प्रतिशत बंधे हुए या ऊपरी आमदनी का माग टोलनेवाली सरकारी योननाएँ । क्यों कि इनमें तो आराम से, ढिलाई से, खा पीने के बाद अनशिष्ट क्रियाशीलता से काम होगा जिसमें होंगे बड़ी-बड़ी बानें, बड़े-बड़े विवरण जनता-जनादन की कमजोरियों का दिग्दर्शन और अपने को दयदूत, विशरण प्रकट करने की भ्रष्ट चेष्टाएँ ।

भगवान सहावीर की देन

ले — नाथूलाल जैन (साहित्यरत्न शास्त्री)

“वह सत्कार बड़ा ही विचित्र है। इसमें दृष्टि फैलाकर कहीं भी देखो, सुग शक्ति का लेश भी दिग्गर्भ नहीं देता। चाहे धनिक हो या गरीब, त्याग हो या सेवक, पति हो या पत्नी, पिता हो या पुत्र, गुह्य हो या शिष्य और कृपण हो या जर्मादार किसी भी दशा में कोई भी प्राणी हो वह दुःख रूपी दावानल में झुलसा हुआ ही दिग्गर्भ पड़ रहा है। दूसरों की क्या मोचू, मैं स्वयं इस अश्रुति से दूर नहीं हूँ। मेरे भातर का सत्कार ही स्वयं असाए और राग, द्वेष मोह आदि प्रवृत्तियों से भरा पड़ा है मैं स्वयं रोग, शोक, अम जरा और

भूल-वास आदि से पीड़ित हो रहा हूँ। किस प्रकार मैं इस दुःख से छुटकारा पाऊँ और हम दृश्य जगत का दुःख मेरे द्वारा किस तरह दूर हो। वाश मैं दुःखिया के दुःख दद मैं काम प्राऊ, इस समाग पर लगा सऊँ।” इहीं महान विचारों के द्वारा पूष जन्म महावीर ने तीव्रकर कम का बंध किया और जगज्ज्वार की भावना से ये नर से नारायण होने की योग्यता को पा सने। इस योग्यता को पाकर भी महावीर अपने जन्म में त्याग और तप से अन्य धातु मिश्रित सुवर्ण के समान कर्म सबद्ध अशुद्ध प्रात्मा को शुद्ध बनाने के

यदि जवाहर या देश त्यागी, निरुद्धी, सेवा भानी, कमठ, चरित्रवान् कायकर्ताओं या श्रमण की सृष्टि नहा करता है तो फिर उसने उद्धार की बात करना स्वतन्त्रता के स्थायीत्व का आकांक्षा रत्ना व्यर्थ है। जनता, मानव समूह का एक बड़ा भाग तो आज भी वैसा ही है वैसा वह पहले था और भविष्य में भी वैसा ही रहने। और इसीने सच्चे कल्याण के लिए इन श्रमणों को काय करना होगा उस

समय भी जब व उनका निरस्वार करेंगे। यह काय कठिन नहीं है गोस्वामीजी ने कहा है, ‘पर हित’ जिन के मन में होता है उनके करने के लिए समार में कोई काय तुल्य नहीं होता।’ अतः प्रभु से प्राथना है यह जवाहर और देश को सुमति दे ताकि युग के अशुद्ध पुत्र श्रमण-संस्कृति के द्वारा हम मानव कल्याण और अपनी नव ज्ञान स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके।

लिए कटिबद्ध हुए। उन्होंने राज्य, शक्ति को दूकराया, प्रारम्भ से ही भोग विलासों के साधन कामिनी आदि के सबध का परित्याग किया। एकल विहारी होकर वन को अपना निवास स्थान बनाया। समता को अपनी सह चरी बनाकर बाघ शत्रुओं पर नहीं बरन शत्रुता शत्रुओं पर वे विजय पाने के लिए ध्यान रूपी खड्ग लेकर निकल पड़े। बारह वारों की पार पायना के पश्चात् उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। वे पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ बन गए। इस प्रकार स्वयं निर्विकार, रागादि शत्रुता दुःखों से रहित होकर जनन मुक्त और अनन्त ज्ञान के धनी महावीर ने अपने कल्याण के मार्ग से पितृ कर्मण्य प्राणियों को, जिन्हें मनुष्य मा और पशु भी, मुक्त और शक्ति का उपदेश दिया।

महान महावीर ने, जो अपने ही पुरुषार्थ से सामान्य मनुष्य से विशेष या अद्वैतपद को प्राप्त हुए थे, अपने आदर्श द्वारा अपने स्वभाव और सामर्थ्य को भूल रही जनता को उसने स्वभाव और सामर्थ्य का बोध कराया। म महावीर ने स्वयं म श्रयोन्मत्ता रत्न कर परोपदेश का उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया, जिसका कोई प्रभाव जनमानस पर नहीं होता। उन्होंने 'श्रुत्वानु दरिभ्यामि मामेक शरणां ब्रज' (म तुम्हारा उपहार करूंगा तुम मेरी शरण में आ जाओ) का

आदर्श भी नहीं रखा। क्योंकि संसार में दूसरा कोई किसी मनुष्य का न कभी कुछ बनाबुरा कर सकता है और न कर सकने में समर्थ है। एकदुःखी का दूसरा दुखी कुछ भी नहीं कर सकता। जो कुछ होता है अपने द्वारा है। यह जो अपने ही काय से मुन्नी जाता है और अपने ही काम से मुन्नी। 'ईश्वर प्रेरितो मन्तेस्वगावा श्वभ्रमेयया' (ईश्वर से प्रेरित होकर ही हरेक प्राणी स्वर्ग या नरक को जाता है) इसी भी महा वीर प्रभु ने कालनिष्ठ बताया। समन्वय दृष्टि में उच्च दोनों शक्तों में प्रथम का अभिप्राय सगत हो सकता है कि ईश्वर की भक्ति करने वाला पहले दास रूप से भक्ति करता है और जब वह ईश्वर के गुणों का अनुकरण करता हुआ उन गुणों का अपने में विकास कर लेता है तब वह स्वयं मुक्त हो जाता है। इस प्रकार ईश्वर के आलम्बन से वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। द्वितीय श्रवण से तो ईश्वर ही स्वर्ग या नरक में भेजने वाला सिद्ध होता है, पर ईश्वर भक्त को ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण के फल के प्रति श्रद्धा या उदासीनता की प्रेरणा ही मिलती है यह मानना चाहिए।

आत्मा के शत्रु राग द्वेषादि को महावीर स्वामी ने जीता शत्रु के जिन कहलाये और उनसे अनुपायी—उन्हें अपना शत्रु माननेवाले—जैन कह लाते हैं। गतानुगतिकता से या बुल

परमरा से हम महावीर के अनुयायी
नो रहें और उन आदर्श गुणों में
एक मो गुण की श्रम जीना में
उतारे तो इससे ७ श्रम ही हिन
होगा और ७ दूसरों का। मनुष्य जीना
में मनुष्यता का शां महावीर के जीना
में मिलना चाहिए। हम श्रमों को
पहिता और श्रमों स्वरूप में अनुभव
नों तभी महावीर प्रभु के भक्त कहलाते
योग्य हो सकते हैं।

संसार का सुधार और धर्म का
प्रचार भी वही व्यक्ति कर सकता है
जो स्वयं सुधरा हुआ है श्रमों श्रमों
को धर्म से सुधार करता है। आज
विश्व में बड़ी हुई श्रमातीत्य शक्ति और
सुद जय विभाषिका को दूर करने में
समय केवल शास्त्र विवेक तत्त्वज्ञान नहीं
है बल्कि अपने आचरण द्वारा उन्नत
व्यक्तित्व ही समय है। महाभागोपी ने
अहिंसा का प्रतिपादन श्रमों जोरा को
अहिंसक बनाकर ही किया था। महा-
वीर जयता का उद्देश्य वही है कि
महावीर का अहिंसा, अश्रमिह और
अनेकान्त सिद्धांत समस्त विश्व में फैले।
इससे जैन धर्म का प्रचार हो इसलिए
नहीं किन्तु हिंसा और परिग्रह आदि
कार्यों से संसार अत्यंत श्रमों और
दुःख बन रहा है उसको शांति और
सुख पहुँचाना ही महावीर की जयन्ती
अथवा महावीर के सिद्धांत का प्रति-
पादक साहित्य या श्रमों उपदेश आदि
साधनों के प्रचार का उद्देश्य है। यत्न

है कि प्रचार किया जाय तो मैं महा-
वीर के केवल श्रमों किया था।
उसी अहिंसोपा कर श्रमों के
उत्पन्न बनाया। श्रमों के
श्रमों, श्रमों, जल आदि परार्थ भंडार
में कान आते हैं उगा प्रकार राग
द्रेप, इच्छा, कर्मा आदि से श्रमों
में महावीर भी भव्य प्राणियों के श्रमों
आए। श्रमों का श्रमों और श्रमों से
सतत संसार का श्रमों ही होता है यह
श्रमों श्रमों श्रमों श्रमों की श्रमों
है कि इन प्राणिक परार्थों से श्रमों
मिल जाता है। श्रमों, श्रमों
इति, श्रमों आदि का श्रमों योंही नहीं
श्रमों करता। इसमें श्रमों को
श्रमों पूर्वाश्रमों कर्म का फल श्रमों
मानना चाहिए। इसमा-यता से श्रमों
कर्म, संसार, मुक्ति आदि में विश्वास
संसादा होगा है और सुधारा आदर होगा
है। यह श्रमों कर्म भी तो श्रमों
पूय पुरुषार्थ द्वारा ही बंधा करना
है। श्रमों तक की श्रमों वाले कर्म
भी यह श्रमों श्रमों पुरुषार्थ में श्रमों
कर निष्कलं नित्य सुद बनाया है।
श्रमों श्रमों को निष्कलं, श्रमों
दायिक और श्रमों श्रमों श्रमों के
लिए मैं महावीर ने श्रमों श्रमों का
श्रमों जीवन को श्रमों उठाने के लिए
अहिंसा एवं अश्रमों का उपदेश
दिया। मैं महावीर की श्रमों का प्रति-
यह देता है जो संसार का श्रमों के
लिए है। उठने पूर्व में श्रमों श्रमों

मुक्तिपत्र

स्वरूप कुमार गांगेय

सरिता के उस तट पर सम्राट यशोवीर्य का भीष्म कालोन महल है। और महल से लगभग तीन मील की दूरी पर, पूरब की ओर पाटलपुर की समराइयों में एक पुराना जीर्ण शीर्ण कुटिया है, जो इन दिनों सूनी है, और अपने बिहुड़े हुयों का षणों से पय जोइशी सी निराक्रन्द खड़ी है। प्रचंड आधिप्यों और भीष्म तूफानों ने उसे पस्त कर डालने के सतत प्रयत्न किये किन्तु कुटिया किन्हीं दृढ़ विरवासों की जड़ों के आधार पर अभी तक अर्जित है, और समराई की छाई में लम्बे लम्बे दिन काट रहा है। लोगों को आश्चर्य है कि इस कुटिया ने गितने बरस निरालम्ब रहकर निकाल दिये, उतने बरस तो देख रेख में रहने

आदि तीयकरो ने भी यही उपदेश दिया था। जनता का विश्वास संया दन करने के हेतु प्रामाणिकता की आवश्यकता है। प्रत्येक जैन कहलाने वाला ध्यति अपने आचरण और व्यवहार से जंत बने और तब अपने कर्तव्य द्वारा विश्व की सेवा करे। जैन सिद्धांतों के प्रचार का प्रथम साधन

वाली सशक्त अट्टलिका भी निर्विघ्न नहीं निफल सकती। इस में कुन्दन कृपक अपने छोटे से परिवार को लेकर रहता था, और भेठी आदि से अपनी जीविना उपाजा कर सतोपपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता था। किंतु घटना चक्र कुछ ऐसा चला कि वह चहकता हुआ सम्पूर्ण परिवार बड़े बड़े प्रहारों के कारण नष्ट भूष्ट होगया।

सो कुटिया आज वन के उदात्त उदायन में उदास सिहर रही है। हवा की व्याकुल लहरें आती हैं तो चुपचाप पल्लवों में विरह गीत के कण भरती हुई इस पार से उस पार निकल जाती हैं। सायन की बरसती हुई रातों में बिजलियाँ चमकती दमकती किसी को दूढ़ने-खोजने आती हैं और निराश

मेरी दृष्टि में यही है। पर महावीर जयन्ती का पुनीत पर्व भी हमें यहाँ स्मरण कराता है। हम इस पर्व की प्रेरणा पाकर विशेष उत्साह और साहस को प्राप्त कर सके और अपने दायित्व निवाह करने में समय हो सके तो महावीर शासन का प्रचार होकर महावीर जय मनाना सार्थक होगा।

लौट जाती है। मेघ भी किसी की याद में रो रो उठते हैं। और पुटिया का वह टूटा द्वार तो हवा के भौंका में बार बार घबड़ हो होकर खुल खुल पड़ता है। विभीषण तूफानी रातों में ऐसा भी लगने लगता है मानो कोई यहाँ फुसफुसाकर रो रहा है या किलकिला कर रहा है। कभी ऐसी है माता कोई किसी का बुला रहा है या डुमक कर छुमक छुमक नाच रहा है। कभी कभी ऐसा संशय आ पड़ता है कि भूत भूतियों का नाच हो रहा है या उनके किसी आनन्दोत्सव के बाने बज रहे हैं। अधिक रात बाने कोई भी पथिक इस सूनी अमराई के पास से निकलने का साहस नहीं कर पाता है। जिन लोगों को इसमें रहने वाले कुन्दा किशान के परिवार पर घटी हुई भयकर घटनाओं की जानकारी है, वे तो अधि यारी-सूनी रातों में कदापि इस पथ पर नहीं आते-जाते।

कुन्दा के परिवार में चार प्राणी थे। पत्नी कुन्दा, लड़का कुन्तल, लड़की यामिनी और वह स्वयं। नदी के कछार में उसका एक छोटासा खेत था, जिसमें चांग माजी उगाकर वह अपना जीविकोपार्जन चलाता था। यदि कछार की रोटी से निर्वाह नहीं हो पाता था तो जंगल से लकड़ियाँ काट काट कर ले आता और उसकी पत्नी कुन्दा उन्हें घर पर लाद कर उस पार नगर की दगड़ दगड़ घूम फिर कर

बेच आती। अमराई के कुछ भाइयों की उसकी अपनी सम्पत्ति थी। उनसे भी उसे थोड़ी बहुत आमदानी ही जाती थी। इस प्रकार उसके दिन कटते चले जा रहे थे।

कुन्दा बहुत सुन्दर थी। जब वह लकड़ियों या आम बेचना शहर जाता तो उसे देख कर वह रूपमंत्रिणाएँ आश्चर्यसे ठिठकी रह जातीं उसकी सौन्दर्य का छूटा दलकल लोग तो यहाँ तक कह उठते कि पाटलपुर का अमराईवा में साक्षात् दवागना ही उतर कर आ बनी है। किन्तु कुन्दा तो जैसे अपने आप से अपरिचित हो भी उसे अपने सौन्दर्य का भार ही नहीं था। सबसे अधिक चिन्ता रहता थी उस कुन्दन का। वह उसे हृदय से प्यार करती थी, और रात दिन उसी की सेवा में जुटी रहती थी। कुन्दा बहुत सरल था। और उसकी सरलता पर न्योछावर होने हुए कुन्दा बरसनी हुई भाइयों में कभी-कभी नाच-नाच उठती थी। 'सो इस तरह कजरी मेघ मल्लार देमात होली, बहार और चारंग अलापनी ककती, लय की तरह प्रवाहित होती हुई सी कुन्दा कुन्दा के साथ जीवन-पथ की मजिन्न पार करती जा रही थी। और कुन्दन भी था शुद्ध सरल का स्वर, जो कि जीवन के आराइ अकरोह पर निरंतर अपनी हृदयस्वररी लय को निभाता चला जा रहा था।

एक दिन सम्राट यशोधर के समक्ष उनके मुह लगे मृत्यों ने कुंदा के अलौकिक सौंदर्य की याचना की। और यह तब कह डाला कि अनेकों रूपसिया उस कृपक स्त्री के समक्ष लज्जित होकर नतमस्तक हो जाती हैं। कुंदा के रूप का यश मुनकर सम्राट कामगि से याजुल हो ऐसी भुवन मोहिना को आलिंगन पाश में बांधने के लिये अधार हो उठे। उन्होंने मृत्यों को दूर हटाकर गुप्त विभाग के मुख्य विश्वास पात्र अधिकारी को बुलाया और आदेश दिया कि पाटलपुर की अमराहियों में रहने वाला उवशी कुंदा को वह आठ रात दूबने के पहिले पहिले विशेष खिलास यह के शयनकक्ष में उपस्थित करे। आदेश मिलते ही अधिकारी उठा और बिजली की तरह कक्ष के बाहर सपन अधिकार में तिलीन हो गया। भभावाती के साथ ही मसलाघार बंधा हो रहा थी। मेरों के गम्भीर गजन के साथ त्रिलिखा भी थोड़ी थोड़ी देर में कड़फ रही थी। सम्राट की अधीरता भी क्षण क्षण बढ़ती ही जा रही थी। वे चार बार शय्या से उठ उठकर पूर्वी गवाक्ष से, दूर पाटलपुर की अमराहियों की ओर दृष्टि फैलाकर देखने लग जाते थे, किन्तु घनी बरसात में उन्हें कुछ भी नहीं दीव पड़ता था।

रात आधी बीत गई, सम्राट करवटें

बदलते बदलते जग शिथिल हो गये तो निद्रा ने उन पर अधिकार कर लिया। भभाके साथ बरसात उसी तरह होनी रही। थोड़ी देर बाद सम्राट जब गहरी सुषुप्ति की गोद में थे, गुप्त द्वार घारे से उघड़ा और दूसरे ही क्षण चार खड़ग धारी रजिस्त्रियों के साथ अनेक आभूषणों से विभूषित अपसरा सी सौंदर्यमयी रमणीने सिसकते हुये शयनागार में प्रवेश किया। बरगत्त इस समय कुछ कम हो गई थी और अब केवल शाही उद्यान के वृक्षों पर बरसती हुई बूंदों का मधुर संगीत चल रहा था। प्रधान रक्षिण ने, मधुर सुती वाद्य बज के तारों पर मधुर रागिनी का प्रथम चरण छेड़ते हुये सम्राट को जगाया। जैसे ही सम्राट ने आँख खोली रक्षिणों ने मुक्कर अभिवादन किया। त्रिपु मणि मोतियों से लदी हुई कुंदा आँगों में झोंक भरकर धातयन से दूर सपनना में दृष्टिगन्नाये खड़ी रही। आभूषणों से विभूषित कितान स्त्री कुंदा आज वास्तव में अपसरासी ही लग रही थी। सम्राट उस रूप को अपलक देखने रहे। प्रमुख रक्षिण ने विनयपूर्वक सतक स्वरों में कहा कि सम्राट के आदेशानुसार कुंदा कृपक की स्त्री आभूषणों से विभूषित कर चरणों में प्रस्तुत की जा रही है। सम्राट ने जैसे कुछ मुना हा नहीं। वे कीलित से जैसे कोई स्वप्न देख रहे थे। कुछ क्षण बाद वे

अपने श्राप में तब लौट जब कुन्दा के सर की चूड़ामणि मणिचपरों में जलते हुए दीर्घा के दीप्त प्रकाश में यथायक दमकी। सम्राट मधुर मुस्कान के साथ पयक से उठे, और रक्षिकाएँ कुन्दा को वहीं छोड़कर उसी द्वार से वापस लौट गईं।



रात बाती, दिन बीता, सप्ताह, महिना और वर्ष भी बीत गया। कुन्दा का क्या हुआ यह किसी को भी शान्त न हो सका। हा वानोका कुछ दिनों तक यह जन श्रुति अवश्य चलती रही कि एक दिन सम्राट ने निजिमावस्था में कुन्दा का विषया बराबर मसार से मुक्ति दिला दी।

जिस रात कुन्दा का अपहरण हुआ था, कुन्दन तब से ही बड़ी विचित्र मनोदशा में था। उस हृदय विदारक घटना के बाद उसका राना-पाना सोना तब कम हो गया। रोती के काम में उसका जी नहीं लगता था और मजदूरी करना भी उसने छोड़ दिया था। वह पागलों की सी अवस्था में दिन दिनभर अमराई के निरापने वृक्ष के पास बैठा बैठा न जाने क्या सोचा करता था और मन ही मन न जाने क्या बुझुदाया करता था। कुन्दा अपने पोछे लड़की यामिनी और पुत्र कुत्तल को छोड़ गई थी।

कुत्तल या केवल दो बरस था। कुन्दा के जाने के छह महीने बाद उन्नित देव रेता के अभान में कुत्तल बीमार पड़ा और मृत्यु के मुग्न में चला गया। अब रह गई यामिनी जो कुन्दन उसे किसी तरह सम्हाले हुए उद्भास अधिक ही तरह जीवा के उतार चढ़ाव पार करती लगी। न उस गति का ध्यान था और न मजिल का।

सम्राट यशोवीर्य का शासन बढ़ा आतकपूर्ण शासन था। उसके राज्य में प्रजा अत्यन्त लुप्त और दुर्ती थी। उसके मुह लगे जागीरदार सेंट सहुकार और अमीर उमराव रात दिन जनता का शोषण करते थे। राज्य के छोटे बड़े धूर्त अधिकारी निर्धनों को चूमने में सलग्न थे। दुखियों को चींग पुकार मुनने वाला वहा कोई नहीं था। राजा के पास शिवायन ले जाने वाला देव द्रोही समझा जाता था, और उस बड़ी से बड़ी राजा भुगतना पड़ती थी।

सम्राट चारित्रिक दृष्टि से तो अत्यन्त दोन पुरुष था। वह इतना विलासी और लम्बट राजा था कि विसर्गिक सौ दर्याली कुल कामिनिवा राज भय से सदा प्रकम्पित रहा करती थीं। ऐसे आपदापूर्ण शासन में सब लोग केवल मान्य के भरोसे रहकर अपना जीवन बिता रहे थे।

एक दिन सम्राट के जीवन में सबसे बड़ा खुशी का दिन आया। पटरानी

विमावनी की क्रीडा से शुभ घड़ी में पुत्र
ने जन्म लिया। अभी तक सम्राट की
काई सतान न थी इसलिये पुत्र-जन्म
की खबर पाकर वे हृदयोल्हास से उछल
पड़े। मदमाने मगराज की तरह भूमते
हुए उन्होंने मुख्य राज्याधिकारियों को
आदेश दिया कि राजकुमार का जन्मो
त्सव सारं राज्य में बड़ी धूमधाम से
मनाया जाय। और साब्र स्वयं म यह
मा कहा कि ऐसे समय में जो लोग
उदासी अथवा ध्यातुलता का प्रदर्शन
करें उन्हें तुरन्त कड़ा से कड़ा दण्ड
दिया जाय। सम्राट के मुख में
निकल हुये शर्दा का अचरय
पालन ही इसलिये घोषणापत्र तैयार
किया गया और तुरन्त राज्य के कोने
काने में विस्तारित कर दिया गया।
ममाचार फैलते ही गगर-नगर और
डगर डगर सब्र घादियों से ध्वनियाँ
उठने लगीं और जनाकार्य हाट-बाट,
चौराहों पर बार-बार नाच गान
करने लगीं।

सो उस दिन रात को जब सम्भूषा
नगरा राजकुमार के जन्म की खुशी म
दाप से चमचमा रही थी, पाटलपुर की
अमराहियां म प्रगाढ़ अधकार था।
भव से कातर कुन्दन ने आखों म
आगू भरकर दापमालिका जलाई तो
चौदह वर्षीय यामिनी रोरनी ही तरह
दौड़ी और सब दिये बुझा दिये। कुन्दन
न जब प्रशासक आले सोले हुए
उसकी और देखा तो नागिन की तरह

ऊफकारती वह बोली, दो वर्ष पहले राजी।

दिन हुई माँ के अपहरण की घटना को
क्या भूल गये बापू! आप ही ने कहाया
कि एक न एक दिन ऐसे राजा के विन्द
विद्रोह का मरणा उठाया जायगा और
दवी हुद चुध जनता को उसके उदार
का मार्ग मुफाया जायगा। इन वहती
हुई हवाओं म माँ की चीख पुकार मुझे
कह रही है कि वह दिन आगया है।
कुन्दन हिचकिया भर कर रो पड़ा।
बरबस आसुओं को रोक्ते हुये
यह फिर बोली 'भयभीत होने का
आवश्यकता नहीं है बापू! मन जलाइये
दीप। भरी सभा म इसका उच्चर म
दूगी, म चूमगा मृत्यु का। मेरी मृत्यु
रंग लायेगी। मुझे विश्वास है मेरे
बलिदान से लाख लाख जाता का
उदार होगा। कुन्दन आश्चय नकिन
हो अपनी बिटिया को देखता रहा।
पीरे धारे उसकी आखों से अखिल
अधुधाराए प्रवाहित होने लगीं। कुन्दन
के प्रयत्न वेग म उससे भरते हुए उसने
कहा, 'बिटिया! व्यर्थ की निपत्ति मोल
न लो। जो राजा है, जो शक्त है
उसका हम क्या बिगाड़ सकते हैं?
नादानी छोड़ो और चार दीये तो
जला ही दो।' यामिनी ने नकारात्मक
सर हिलाया और दृढ़ता पूर्वक बोली,
'नहीं, नहीं, आज दीप मालिकाए गद्दी,
ज्वालाए' धमकाऊगी'। कुन्दन चुप
हो गया। कुछ दर सोचता रहा, फिर

उसकी आँखों में भी लाल लाल डोरे उभर आये। उसकी स्मृतियाँ जाग उठीं और उसकी भरी भरी आँखों के सामने कुन्दन की चीरणी चिह्नाती मुद्रा साफ़ार हो उठी। आखिर रात बीत गई और पाटलपुर की कुटिया ने दीपोत्सव में भाग नहीं लिया।

दूसरे दिन प्रभात कालीन शिरछों जब आस्र पल्लवों पर थिरक रही थीं, और वीथल बूक रहा था, सम्राट के सिपाही रुत विभाग के निर्देशानुसार कुन्दन और यामिनी को पकड़ने के लिये आये। कुटिया का द्वार बन्द था। सिपाहियों ने पहिले शीम ही कुटिया को धर लिया, और फिर उनके सरदार ने आगे बढ़कर द्वार खटखटाया द्वार खटखटाते ही भीतर से किसी की क्षीण आवाज आई, किन्तु द्वार खुला नहीं। वाक्यी के मद में चूर सरदार ने क्रोध से उबल कर पाँव की एक ठोकर लगाई, कपाट खुल पड़े। उसी क्षण एक काली बिलाई गुराँती भटती बाहर बूदी और देखते ही दखत घने वृक्षों में विलीन हो गई। सिपाहियों ने कुटिया में प्रवेश किया। कुटिया खाली थी। सरदार आश्चर्य और भय से टिठका रह गया। उसी ऊपर आँखें उठाई तो देखा कि एक ओर से छत टुली हुई है वह सब कुछ समझकर भी कुछ क्षण इधर उधर देखता रहा। उस समय वास ठी हवाओं के झोंके इस पार से उस पार

बह रहे थे, और कुटिया की छत पर छाई हुई पल्लवित डालियाँ भूम भूम कर मुक्ति गीत गा रही थीं। कुन्दन और यामिनी को ढूँढने के लिये सिपाही अमराई में चारों ओर दौड़ पड़े। बान की बात में सब दूर उनके भाग निम्नले के समाचार फैल गये। सम्राट यशोवीर्य के क्रोध का ठिकाना न रहा। मुख्य राज्याधिकारी की आज्ञा से सारे राज्य में दिढोरा पिटवा दिया गया कि जो कोई कुन्दन और यामिनी को आश्रय देगा वह मृत्यु दण्ड का भागी होगा। सम्राट के हुस्ताक्षरों से घोषणापत्र भी विस्तारित किया गया कि जो कोई इन दशद्रोहियों को जीवित या मृत अवस्था में सम्राट के समक्ष उपस्थित करेगा वह जायन पयत सम्राट का विशेष कृपा पात्र रहेगा, यहाँ नहीं उसने बाद उसकी पीढ़ियों को भी रा आश्रय मिलता रहेगा।

दिन पर दिन पर बीतते चले गये। कुन्दन और यामिनी का कहीं पता न चला। हाँ लगभग एक वर्ष बाद एक दिन कुन्दन और यामिनी के रक्षितम हुस्ताक्षरों सहित एक 'मुक्तिपत्र राजधानी के प्रमुख ननाड़ीण' चौराहे की मीनार पर चिपका हुआ देखा गया। उगम लिखा था दुख की रात बीत रही है और अकणोदय होने में अब दूर नहीं है। हमारे लाख लाख माहियों और बहिनों! कुटिया की

मनुष्य को अहिंसा (पर सुखीकरण) धर्म की आवश्यकता क्यों ?

मनुष्य को अहिंसा (पर सुखीकरण) धर्म की आवश्यकता यों है कि मनुष्य को चाहता है, वह उसे बिना अहिंसा धर्म के प्राप्त नहीं हो सकता।

मनुष्य चाहता है सुख। अर्थात् मनुष्य चाहता है कि दूसरे मनुष्य उसके प्रति अहिंसक (सुखकर हितकर सरल सत्य) व्यवहार करे। —मन, वचन, तन, को अविच्छेद सम्पन्न एकता का नाम है, सरलता अथवा सत्यता।

परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि वह भी दूसरों के प्रति वैसे ही साम्य

व्यवहार करे, जैसा की वह दूसरों से चाहता है।

अतएव अहिंसक (सरल सत्य साम्य) व्यवहार का नाम पड़ा धर्म। जैसाकि ऋषि वाक्य है कि—

‘श्रयतां धर्मं सवत्सु श्रुत्वा चैवावधायनाम्।
आत्मन प्रतिवृत्तानि परेषाम समाचरेत्।’
अर्थात्— धर्म का सार सुनो और सुनकर उसे हृदय में धारण करो। दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार मन करो कि जिससे, जिन दुःख परिस्थितियों को तुम नहीं चाहते हो, वे उन्हे प्राप्त हो जाय।

और दसों वहाँ से हमारी मुक्ति का एज निकलेगा। यह विश्वास करलो कि सम्राट ताम को भी इस मुन्दर संघार में अब हम चोखित नहीं रहने दगें।

जिस समय लोग यह रक्तिम मुक्तिपत्र पढ़ रहे थे, दूर रानप्रसाद में वादित्रोंके साथ मंगल सुनक शहनाद बहुतही चीख और विह्वल स्वरो में बोल रही थी।

सो, यह है पाटलीपुत्र कीअमरा हयो में शिवन गोर्य कुटिया की कथा।

इन दिनों से उारोक मुक्तिपत्र की

ध्वनि कुटिया के चारों ओर निरन्तर मडरा रही है। इसलिये अबको, तूफानों और पनघोर बरसाता में भी गिरती पड़ती कुटिया गहरे विश्वासों की भरती पर आज ज्यों की त्यों लड़ी है। लोग कहते हैं, इन दिनों रात दिन कुटिया में मणिधर ताम और नागिन का जोड़ा फिरता रहता है। देखने वालों ने तो यहाँ तक श्वा है कि अंधियारी रातों में कभी-कभी वे दोनों प्रलर प्रकाश युक्त मणि से वन-वयो को दूरतक द तिमन करते हुए कुटिया के दर पर रात्र-रात्र मर पहरा दिना करते ह।

साक्ष्य यह निकला कि-अहिंसा (पर मुग्धा करण) की साधना मनुष्य का धर्म है।

यदि यह ठोक है तो मनुष्य को चाहिये कि वह हिंसा की पर्यायों से बचा रहे। अन्यथा अहिंसा (पर मुग्धी करण धर्म) की साधना तहाँ ही सपेगी।

हिंसा की पर्यायें यह हैं—

१ मिथ्यात्व (अनात्मवाद तथा एकांतवाद)

२ कषाय—

४ क्रोध, मान, माया, लाभ।

३ काम (स्रा पुण्य नपु ठक निगों में आसक्ति)।

६ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा (घृणा)।

आजका मनुष्य अहिंसा (पर मुग्धी करण) धर्म को त्याग कर हिंसा की ठक पर्यायों (अथ काम समह) क सारे (नादमें) लगा हुआ है— दूसरों में सुख साधना का बटवारा करना छोड़कर अथवा “जिओ और जाने दो” इस अहिंसावाद (आध्यात्मिक साम्य वाद) को छोड़कर सुख साधनों (अथ काम) का लूट सछोट में लगा हुआ है।

आज यह ऐसा भयंकर स्वार्थी हो गया है कि इससे स्वार्थ के शिकार अन्य चराचर पशु जगत तो होता ही है परन्तु स्वयं मनुष्य भी मनुष्य का शिकार होता है। पशु जगत से सुरक्षित रहने के लिये मनुष्य इतना प्रयत्न नहीं करता जितना कि मनुष्य से सुरक्षित रहने क

लिये पशु करता है। -याने मनुष्य को मनुष्य का शिकार भा है उगा अन्य किसी का नहीं।

सचमुच आज तो मनुष्य पशु से भी गिर गया है। भी अगजीवनराम ने ठोक कहा है—

“आजकल मनुष्य को अथवा पशुधर्म में अधिक पारस्परिक स्नेह दिखाई देता है। क्योंकि पशु धरती भूल मिटा लेने के बाद दूसरों को पेट भरने ही इगागत तो दे देता है। परन्तु मनुष्य तो धरती जवरों पूरी होने के बाद भी दूसरों को उनका हिस्सा लेने नहीं देता।”

यही कारण है कि आज मनुष्य मुग्धी नरर नहीं आ रहा है।

उदार का सही मार्ग—

अग्नि व्यासजी का उपदेश है कि—

“उपवाहुर्विरोधय नैव कश्चिन्नुद्योतिम धर्मादथथकाममथ सधनं दिनसेपते।”

अर्थात्—मऊना हाथ कर क पुकारता हू, पर मरो कोई मुनता नहीं। धम में ही अर्पे काम उमाया हुआ है। ऐसे सरल धम का लोग फर्मा सथा नहीं करते।

सर गुरुदास बनर्जी (गा और कर्म में) लिखत हैं—

“मनुष्यों में स्वाय और पराध इतने अनिच्छिन्न रूप से बने हुए हैं कि सथा स्वार्थ परार्थ छोड़कर ही ही नहीं सकता।”

भी प राजमल्ल (पचाप्यायी में) लिखते हैं—

‘आत्मे तरागियामग रक्षणं यमत् स्तुते।
तत्र स्वात्म रक्षाया-कृतनातपरत्र यत् ॥’

अर्थात्—अपने से भिन्न दूसरों का रक्षा का जो विधान है, वह केवल अपनी ही रक्षा के लिये है। इसमें वस्तु-दूसरों की बात कुछ नहीं है।

म गांधी कहते हैं—

“हिंसा आत्मगती है। उससे सम्मने यदि प्रतिहिंसा न हो तो वह जिंदा नहीं रह सकती।”

एक गुदजन का कथन है—

“हम परस्पर में हृदय से मिलने के लिय आये थे—भाई भाई बनने के लिय आये थे, परन्तु अपनी दीनता के कारण वैसा न कर सक और वादी प्रतिवादी बन गये। जिस दिन हम लोग अपने आने का उद्देश्य पूरा कर लेंगे, वह दिन हम लोगों का यथार्थ सुख का दिन होगा।”

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विचित्र प्रबंध में) लिखते हैं—

“हारे ज्ञान और विश्वास को पक्का (सम्यक्) कर के अपने स्वभाव (कार्य) के साथ मिला देने का नाम सरलता है। यही मानसिक स्वास्थ्य है। तरह तरह के ज्ञान तथा अनेक प्रकार के मतों का नाम स्वास्थ्य नहीं है।

“सरल विश्वास मनुष्यत्व का सब से बड़ा प्रधान अंग है। यदि मुझसे कोई मेरे हृदय की बात पूछे तो मैं साफ साफ यह कहूंगा कि सचर में और दूसरी कोई भी वस्तु सरल विश्वास की

अपेक्षा अधिक मनोहर नहीं है। इस सरलता के न रहने पर सम्यता की सारी सुंदरता जाती रहती है। क्योंकि स्वास्थ्य नहीं रहता। मनुष्य प्रकृति का स्वास्थ्य सरलता ही है।

‘यदि सम्यता अत में सरलता के साथ में सम्मिलित नहीं होगी तो उसे अपने आदर्श की पूर्णता भी प्राप्त नहीं हो सकती।’

श्री बकिमचंद्र (चौबे काचिदामे) लिखते हैं—

“र जाने यह मनुष्य समान कब सच्चे सुख के पाने का उपाय खोजेगा। जितने विद्वान, बुद्धिमान दार्शनिक, और तरववेत्ता हैं, वे सब मिनकर देरों कि औरों को सुखी बनाने के सिवाय अपने सुखी होने का और कोई उपाय है या नहीं। मैं कहता हू कि नहीं है। मनुष्य के सुख का मूल कारण दूसरों को सुखी करने के सिवाय और नहीं है। आन जैसे लोग धन मान आदि के पीछे पागल ऐसे फिरते हैं, जैसे ही एक दिन सारी मनुष्य जाति दूसरों को सुखी बनाने के लिये पागल हुई फिरेगी। म मर कर मिट्टी में मिल जाऊंगा मगर मेरी यह आशा एक दिन अवश्य सफल होगी।”

इस प्रकार मनुष्य को अहिंसा (पर सुखी करण) धर्म की आवश्यकता है। भारत की यही सु सस्कृति है। बिना इसके मनुष्य सुखी नहीं हो सकता।

नाम विज्ञप्ति मात्र है ।

संज्ञति में द्विविधा का एक अति भयकर अलानचक्र अपनी सम्पूर्ण उष्णता के साथ आवर्तमान है। इस निरन्तर प्रवहमान अग्निचक्र की प्रज्वलित अराओ और अविश्रांत आवर्ता में एक भैरव सघषणा है। वस्तु-अवस्तु, आत्म अनात्म, नाम अनाम अपनी परनी, आलोक तिमिर आग पानी और जीवन मरण का यह विराम विहीन संघर्ष जगत के होने का इकलौता प्रमाण है। इस महायुद्ध के दामन में नींद ले रही विश्व का दग्धात्मा के दर्शन नाम है मोक्ष और अदर्शन का नाम है जगत ।

अधमित्र नक्षत्रोंकी युक्तती जागती भिन्नाभिलाषट के बीच प्रकाश इन प्रकार झूठ रहा था जैसे तक्षशिला बिहार के प्रवारण-चक्रमण पर निरवल बंटे बोधिसत्व के उपस्था से अत्यन्त स्थीन मुलमडल पर विराग । तक्षशिला के प्रासादों का ख बोधिसत्व की पलकों पर पहुँचकर नारख हो गया था । इधर भगवान अमिताम के मुख पर अतिशय गतिशीलता के साथ विचार रूप उभर रहे थे उषर उषरम्दा और दशना

के लिये आये उपासकों के अतस्तल में द्विविधा का निरन्तर रूढ़ द्विद्धा था । ज्योति और तमम्, कथनी और करनी, जिदगा और शीत, पानी और आग, वस्तु और अवस्तु के बीच युगों से छिटे युद्ध की देल बोधिसत्व की विचारणा मौन थी । उहाँन बहिरग क मानव से लड़ना छोड़कर अतरग के मानव से युद्ध आरंभ किया था । भगवान बुद्ध का दिनदिनी का प्रमुल कार्यन्म उप काल में परिवेण-चक्रमण पर बैठकर

जोककञ्च मनं दिस्वा धनपालिञ्च दुग्गा,
पयकञ्च घने मूलहं पापको पुनरागतो ।

उपासकों भ्रामणों, शिक्षामार्ग और भिक्षुओं को देना दना या। तच्छिल के सर्वो नागरिक मानस में शान की श्रुत विधासा लिये प्रतिदिन परिवेष में पहुँचते आर शास्ता की श्रुत-वासा प्रहण करत।

अभी बोधिसत्व का ध्यात दृष्टा ही या कि उनकी दृष्टि सद्यः प्रवृत्त शिष्य माख भिक्षु 'पापक' पर पड़ी। तथागत ने दहा पापक के निष्प्रम मुग पर नाम अनाम का भैरव-रुपात एकदिन या। वह कभी नासिकापुत्रों म प्रकाश रोक लडा तो कभी महाकार सप की तरह उस सिस्कार दता। उसकी मुख-मुद्राओं का मनना मिटना अभ्यास कर रह चित्रकार के चित्राट पर बनी मिटी आकृतियों का स्मरण दिला रहा या।

यद्यपि पापक का मानस मुत पर आकार कई भाव उलीच जाता पर वं सब कुछ क्षणों व उपरान्त जल-पात्र म मथित बारीक मिट्टी की तरह पुन समनल हो जाते। पापक का ऊहापोह के प्रति विरक्तभाव होते हुए बोधिसत्व ने यथासमय दशना आरम की। तपस्या का तरह उष्ण और विनेक की तरह सजुलित स्वर म शास्ता ने कहा—

‘उपासको ! उदार में दुल ही दुल है। श्रवणु दुल का माग है। राग से बचो। विराग की प्रहण करो। शरीर को अधिक कष्ट मत दो। आत्मा

को समझो। मन से गिरतर मुद करो। नाम कर्म का भेद मत समझो। यश प्राप्ति के लिये रसे गये नामों का वस्तु मे कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रमण्य वस्तुओं के समारोह में स विनेक के लिये विधारित सक्त ही नाम हैं। ताम तो पुकारने के लिय है उरका वास्तुविहता से किंकितात्र भी सवर नहीं है। प्रत्यक पदार्थ एक क्षण म जो है दूसरे क्षण वह, वह नहीं है। जगत् पानी व बुदुद की तरह भगुर है।

× × ×

निश्चित समय पर दशना विद्य भित हुइ और बोधिसत्व परिवेष के प्रमुख अभ्यया-वृत्त में चले गये। किंतु शघर युवा पापक व मानस में नाम-कर्म का आकण्य विवर्ण आरम हुआ। वह बाहरी बाता पर विचार करने वाला युवा है। उसकी आँखों की पुनलियों पर विचार इन तरह दीडा करने हैं जैसे भयंकर आंधा म तिनव। यहाँ तक कि पलकें श्रोद लेने पर भी उसका द्रद ऊपर उभर आता है। वह अहरह बहिरग के विश्लेषण में यस्त रहता। कर्म की अपक्षा नाम की सिद्धि की उहापोह पापक म अधिक है। इसीलिये अब कभी कोई उसे पापक कहकर पुकारता है तब वह पन पर प्रहार पाये सप की तरह भीतर ही भीतर सिस्कार उठता है। अंतरम में निर्जाल अग्नि की तरह भइकते रहना उसका स्वभाव

हे । वह सोचता मेरा नाम 'पापक' है । निरुपय ही मने अतिमिनत पाप किये हामे तभी ता मेरे अनाम शरीर के साथ यह विपत्ति जोड़ दा गइ है । यों अंतरंग स यह पूरी तरह विध्याप है, पर बहिरंग का पाप उस पर एक छत्र होकर बोल रहा है । उस पापक सम्बोधन से भिरकिन हो गई है । उमका यश चल तो यह क्षणभर म हम भिरगति का बदल डाले । त्रिबने काले सौंप की तरह उसका अमांगलिन नाम उग्रक अंतरंग म डक मारने लगा है । इसी लिये सावजनिक दर्शना की समाप्ति पर उमने बोधिसत्व स आग्रह किया 'मते । मेरानाम अशुभ और अमांग लिकु है । मुझ इसगे विरकिन हा गइ है । प्रभो मुझ अपर नाम का अमुग्रह कर ।

'श्राधुष्मा नाम ता मकेतमात्र है । वह तो दुलाने भर को हं । नाम से किसी प्रकार की अध सिद्धि गहा होनी । तू इसी नाम स सतुष्ट रह ।'—शास्ता ने थिके और विचारणापूर्वक पापक को उपदेश दिया ।

किन्तु जब पापक न बार बार आग्रह किया तो तथागत न उम अदेश दिया कि—'मते । तू दश देश म परि धमणु कर अपनी म्चि कानाम दूजे तेरा नाम देसा ही रख दिया

×

×

अभी बला ही या कि उसे लक्ष्मिणा के उपरुक्त-लोक मे एक मृत्यु का सवार भिगा । जीवन का अस्थिरता क विचार में टूटना उतगता गेमे हा वह आग बढ़ा उमे शय-वाथा दिगाई दी । शय यात्रियों स पुशुताप करने पर उम पत्रा लगा कि 'जीवक, नामक नागरिक का दहा १ हा गया ह और उमक पारि वारिक उमे उमका दाहक्रिया के निग ले जा रहा है । इगा समय पापक मे साहसपूर्वक एक शय । यात्री म प्रश्न किया—'उमका नाम क्या था ?'

"जीवक"

'क्या जीवन मी इस तरह मरा करने हैं । नाम की नित्यता यन्तु की नि यला को प्रकट करती है । यह असंभव है ।

'मते नाम मो प्रकृति मात्र है । वह तो सम्बाधा का गण है । सवार म 'जीवक' और 'अजीवक' ममी मरा करत हैं । शययात्री ने विग्न भाव स प्रत्युत्तर दिया ।

पापक को लगी । उसका नाम था जीवक

मन की तरह पर आते बैठते विचारों से उलझना मुलझना वः तत् दिना के आश्रय सीमात पर आगदुचा। यह उनगर अेष्टिन् दग की बस्ती है। यहा तदशिला के पेश्वर्य का आवर्तन विवर्तन होता है। पापक अविद्यम निश्चल भाव से गगन चूमती इगलिङ्गाओं की देवता आगे बढ़ रहा था। प्रहोग पर पड़ी स्वयाम भालरें पन्न के भोक पर चिटाकात विचारों की तरह भूल रही थी। स्वर्ण पुरुष नम की नालिमा से उतर कर प्रताची की लालिमा में डूब चला था। अेष्टिन् मुग्धम् क नये वन रहे प्रासाद से भ्रमिकवर्ग पछिया की भाति लौट रहे थे। अनायास ही वह उस और बढ़ गया। अब वह प्रासाद की छत क ठीक नाचे आ गया। यहाँ भ्रमिना की पारिभ्रमिक वितरित क्रिया जा रहा था। किन्तु इन सब अभिजात नाटका को चीरती हुई पापक की दृष्टि सुमेधस् के द्वार पर बिलग बिलल कर रो रहा एक दरिद्र भ्रमिक कन्या पर उदर गई। उसने रुदन कर रही कन्या क समीप पहुंचकर पूछा—

“भते तुम्हें कौनसा दुल है।”

“तात, न पूछिये। मैं भ्रमिक कन्या हूँ। प्रतिदिन धम करती हू और जो कुछ मिल जाता है उससे अपना और अपने परिवार का उदर पोषण करती हू। पर यहते कहते भ्रमिक-कन्या की बरीनिया पर आगू लटक गए।

युगल कपोलों पर शरीर का समग्र रक्त छिमत आया। वह आपाद स्वेद से भाग उठी। उसकी शरीर यष्टि की कर्कश रोमाली पापक के समग्र प्रश्नों का उत्तर देने क लिये तत्परता से उठ बैठी किन्तु लज्जा ने झिड़ककर उसे वहीं बरज दिया। वह फिर मुकाये भूमि कुरेदो लगी।

विद्वित मन पापक ने नारी ली-दर्श के प्रति अनायास ही उग आये स्वाभा विक आकर्षण को अनभियत्त रखने हुए पूछा—

“धनपाली।”

“धनपाली॥” पालक ने मुस्का रित नेत्रों से भ्रमिक कन्या के शरार को आश्रोपान पड़ डाला और बोला—

“किर तुम इतनी दरिद्र क्यों हो।”

“भते।” धनपाली ने गभीर हंते हुए कहा—“नाम में कोई सिद्धि नहीं। नाम के साथ कम की उगति आवश्यक है। कम की सिद्धि नाम की सिद्धि से श्रेष्ठतर है। ‘धनपाली’ हो या ‘अधन पाली’ मजिनय तो अनिवायता के साथ प्रकट होता है।

उत्तर पाकर पापक आगे बढ़ गया। धनपाली की बानों ने ‘नीवर’ के शव से मिले ‘शिव’ की और भी दृढ़ कर दिया। देखते देखते यह किसी बोझाली

आयुक्ति से विर गया। मनमें गमीर चित्तता ठहरने को हुई ही थी कि आयुध के धनुष से छूटे बाण की तरह पूरी सर्राहट और गति के साथ उसका मन फिर हाथ से फिँसल गया। प्रिक्रि ने उसके डग विज्रन धन की ओर कर दिये। नम अनाम व सधप में स्थित 'पापक' ने वन में एक रेंगती सी छाया देखी। वह स्फूर्ति के साथ उसके निकट पहुँचा और प्ररन किया कि—'तुम कौन हो, मते ?'

'पथिक'—यका सा स्वर उस विज्रन वन में गूँज उठा।

'तुम्हारा नाम'

'पथक'

'यहा क्या कर रहे हो ?'

'मग मटक गया हूँ उपासक। बग दाग तो बड़ा अतुमइ मानूँगा। मुझे पाटलितुत्र पहुँचना है।'

"पर तुम 'पथक' होकर पथ कैसे भूल गये, मते ? यह तो बड़े आश्चर्य का बात है।"

"मते, नम तो केवल पहचान है उसका वस्तु की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं। अनिशप म से विशप को दूढ़ निकालन के लिये ही सजाओं का

आयोजन किया गया है। इसीलिये 'पथक' भी पथ भ्रष्ट हो सकते हैं, अथपक भी।

'तो 'नाम' का कोई महत्व नहीं।'

"सर्वथा नहीं, मते।"

पापक ने पथक को खेन दिया और बड़ पाटलितुत्र की दिशा में चल दिया।

पापक बीपद परिवेष में लौट आया। अब उसके मुख-भङ्गन पर एक अग्रिमेष सतोष, कीतरागता और विरक्ति छा गई है। शास्ता ने पृष्ठा—'मते' बधि का नाम मिल गया ?

'नहीं, मते अतुमधान त्रिफल रहा मने अपनी याथा में देखा कि 'जीवक' भी मरते हैं, 'अजीवक' भी धनगली भी दरिद्र है, अरनगली भी। पथक भी पथभ्रष्ट होते हैं 'अपथक' भी। भगवान् ! जगत् निप्या है, अन्धिर है, भंगुर है। मुक्त स्थविर की दोहा दोषिषे प्रमो।

कुछ ही क्षणों के उत्तरांत उगासक वग न देना 'पापक' अगिताम के चरणों में यह कहते हुए कि 'नम विरक्ति मात्र है, सिद्धि कर्म में है। सर्व मग के शिगु की तरह लौट रहे था।

संस्कृति का जीना मरना नहीं होता

इकाई नहीं, बर द्वाहियाँ मिलकर संस्कृति का निमाण करती हैं। और फिर संस्कृति में मनस् का जितना जोड़ है वपुस का उतना नहीं है। संस्कृति और सन्धता का सबसे बड़ा और बुनियादी फर्क यही है कि संस्कृति मन की नींव पर अपनी शर्तों खड़ी करती है और सन्धता अपनी जड़ें वपुस में रोपती है। चूंकि संस्कृति का विकास ठोक उसी तरह का है जिस तरह भूगम में आस्थियों से पापाय, कोपते से हीरककण और सार पदार्थों से गधक का, इसलिये उसे अकस्मात् या मनगिने प्रयत्नों से जब चाहे तब बदला नहीं जा सकता। संस्कृति का विकास मानवीय नियंत्रण से परे एक ऐसा विकास है जो युगों से निरन्तर चला आ रहा है और जो नित्य नवीन और सन्तुलित है। एडम और ईव, मनु और धन्वा या और भी अधिक न्यायहारिक होने पर यों कहें कि आदि पुष्य और आया तारी के आभ्यान्तरिक संबंधों का निरन्तर रूप ग्रहण करते रहना 'संस्कृति' है। जिन्हें हम आदिम प्रवृत्तियों या 'इंस्टिक्ट्स' कहकर पुकारते हैं वे ही संस्कृति के तल हैं। तलों की धातुएं हैं। इन्हीं धातुओं के संयोग और वियोग, आकषण और विक्षरण से संस्कृति का मरना जीना होता है। सचाइ तो यह है कि संस्कृति का जीना मरना होता ही नहीं। सहस्रों अर्दों से चली आ रही संस्कृति अब अपना प्रवाह बदल कर—उसीके समानांतर युग से चला आ रही संस्कृति के प्रवाह में मिल जाती है और जुब परधर्ती या भूखर्ती प्रवाह का पानी रंग बदल लेता है तब हम कह उठते हैं कि एक संस्कृति दूसरे पर विजित हुई है। पर पारमार्थिक सचाइ इससे परे यह है कि विकास की प्रक्रिया में कोई जीता मरता नहीं बरन् निर्बाध चले आ रहे प्रवाह को बल देना है, योग देना है।

'धमण्य संस्कृति' भी एक ऐसा ही प्रवाह है जो प्रागैतिहासिक काल से मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों के आकषण विकषण, विभ्रय पराजय की तरंगों का आलोडन विलोडन सहता अबतक विद्यमान है। चूंकि 'धमण्य' में मिहानत का खरा पानी है इसीलिये यह 'धमिक संस्कृति' अपना पानी, अपनी प्रतिष्ठा आज तक बनाये हुए है। तपस्या की इटों से जिस भीत की चिन्नाइ हुई है उसकी दीवारें इतनी मजबूत हैं कि प्रालेय आंधियों के आगे पर भी उसके ढहने का कोई डर नहीं। धमण्य संस्कृति के 'माइल स्टोन' महाभ्रमण अणय, पार्श्व, नेभि, महावीर, बुद्ध, कविजल, गांधी, विनोबा सभी हैं और फिर अभी पक्ष समाप्त नहीं है

धर्म और पथ

प्रथम अर्थात् धर्म म अवदशन होता है। वह आत्मा व अदर से उत्पन्न होता है, वही स्थिर रहता है, और मनुष्य को उमा और आकृष्ट करता है। जबकि दूसर अर्थात् पथ म बहिदशन होता है। वह बाह्य वातावरण तथा दत्तादम्नी स उत्पन्न होता है, इसलिये बाहर की आर आकृष्ट करता है और मनुष्य को बाहर का तरफ देखने में रोक रखता है।

धर्म गुणजीवी और गुणावलम्बी है। पथ रूपनीवा और रूपावलम्बी है। उसका आधार बाह्य रूप रग और ऊपरी आडम्बर है। वह वेश, कपड़ों का रग, पहनने की राशि, पुस रखी के साधन तथा उपकरणा की और विशय रुचि दिखलाना है तथा उही का आमह कराता है।

धर्म म एकता और अभेद के भाव उठत हैं और समानता की तरफे उद्य लती हैं। पथ म भेद और विपमता की दरारें पड़तीं और बढ़ती जाता हैं। धर्म में मनुष्य दूसरा के साथ भेदभाव भूलकर अभेद की आर भुक्तता है। दूसरे के दुःख में अपना सुख भूल जाता है, या यां कहना चाहिये कि उसके सुख दुःख कोई अलग वस्तु नहीं रहते। दूसरों के सुख दुःख ही उसके सुख दुःख बन जाते हैं। पथ म मनुष्य अपनी

—पं० मुखनाल सपवी

वास्तविक अभेद भूमि को भूलकर भेद की तरफ अधिकाधिक भुक्तता जाता है। दूसर का दुःख उस पर असर नहीं करता। अपने सुख के लिए वह लालायित रहता है। या यां कहना चाहिये कि उस मनुष्य के सुख दुःख दुनिया के सुख दुःखों से सर्वथा अलग हो जाते हैं। इनमें मनुष्य को अपना और परतवा ये दो शब्द पद पद पर याद आत हैं। धर्म म स्वाभाविक नमता होने के कारण मनुष्य अपने को छोटा और हलका समझता है। उसमें अभिमान मरीदा कोई बात ही नहीं होती। चाहे जिनने गुण तथा सम्पत्ति प्राप्त हो जाय वह अपने को सबसे छोटा ही देखता है। धर्म में ब्रह्म अर्थात् सच्चे जीवन की भांकी जाने से उसकी यापकता के सामने मनुष्य की अपना यकित्व हमेशा छोटा सा प्रतीत होता है। पथ में इससे उल्टा है। इसमें गुण और विभव न होने पर भी मनुष्य अपने को दूसरों से बड़ा मानता है और दूसरों से मनवाने का प्रयत्न कराता है। उसमें यदि नम्रता होती है तो वह बनावटी होती है। उस मनुष्य को सदा अपने बड़प्पन का खपाल बना रहता है। उसकी नम्रता बड़प्पन का शोषण करने के लिए

हामी है सचे जीवन की भाँकी न होने के कारण गुणों की अनवता तथा अपनी पामरता का भान न होने के कारण पथ में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी लज्जा का अनुभव नहीं कर सकता। वह लज्जा का बेवक़्त दिलावा करता है।

धर्म में सत्य की दृष्टि होती है। उसमें सभी तरफ़ देखने तथा जानने का पैर होता है। सभी पक्षों का सह देखने की उदारता होती है। पथ में ऐसा नहीं होता। उसमें सत्याभास का रश्मि होती है। वह सम्पूर्ण सत्य को अपने ही पक्ष में मान लेता है इसलिए दूसरी तरफ़ देखने तथा जानने के लिए उसका मुकाब हो नहीं होता। विरोधी पक्षों को सहने अथवा समझने की उदारता उसमें नहीं होती।

धर्म में अपना दोष दशन मुख्य होता है और दूसरों के गुणों का दर्शन मुख्य होता है। पथ में ईससे उल्टा है। पथवाला दूसरों के गुणों को अपेक्षा दोष ही अधिक देखता है और अपने दोषों को अपेक्षा गुणों को ही अधिक देखता है। अपने ही गुणों का बलान करना रहता है। उसकी आँखों में अपने दोष आते ही नहीं।

धर्म में केवल चारित्र्य पर ध्यान दिया जाता है। जाति, लिंग, उमर, वेश, चिह्न, भाषा तथा दूसरा बाह्य बस्तुओं के लिए उसमें स्थान नहीं है। पथ में इन बाह्य बस्तुओं पर ही अधिक

ध्यान दिया जाता है। अमुक व्यक्ति किस जाति का है? पुंस्य है या स्त्री? उमर क्या है? वेश कैसा है? कौन सी भाषा बोलता है? किस प्रकार उठता बैठता है? पथ में इन्हीं बातों पर ध्यान दिया जाता है। इन्हीं को मुख्य मान कर चारित्र्य को गौण कर दिया जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि जिस जाति, लिंग, उमर, वेश या चिह्न की पथविशेष के अनुयायियों में प्रतिष्ठा नहीं है उन्हीं धारण करके कोई अच्छे चरित्रवाला व्यक्ति भी आ जाय तो वे लोग उसकी तरफ़ ध्यान नहीं देते। कई बार तो उसे अपमानित करके निकाल तक देते हैं।

धर्म में सारा ससार एक ही चौका है। छोटे-छोटे चौक न होने के कारण उसमें छुआछूत या घृणा द्वेष की बात हा नहीं। यदि कोई बात बुरी समझी जाती है तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना पाप ही बुरा लगता है। पथ में चौकेबाजी इतनी जबर्दस्त होती है कि हर एक बात में छुआछूत की गंध आती है। इसी कारण पथ वालों की नाक अपने पाप के दुर्गंध तक नहीं पहुँचती उन्हीं जितने दुर्गंध अपने पथ के बाहर बाहर स आती है उतनी अपने पाप से नहीं स्वयं जिते स्वीकार कर लिया व उन्हीं सुगन्धित लगता है। अपना पक्ष हुआ रास्ता ही भेष्ट दिखता है

धर्म और पथ

प्रथम अर्थात् धर्म म अन्तरात्मान होता है। वह आत्मा पर अन्तर मे उत्पन्न होता है, वही स्थिर रहता है, और मनुष्य को उर्मी और आह्वय करता है। जबकि दूसरे अर्थात् पथ म बहिर्दशन होता है। वह बाह्य वातावरण तथा देवादेवा से उत्पन्न होता है, इसलिये बाहर की ओर आह्वय करता है और मनुष्य को बाहर की तरफ दखने में रोक रखता है।

धर्म गुणबोधा और गुणाबलम्बी है। पथ रूपबीबी और स्यावलम्बी है। उसका आधार माय रूप रंग और ऊपरी आहम्बर है। वह वय, कपड़ों का रंग, पहनने की राशि, पूस रखने के साधन तथा उपकरणों की ओर विशेष रुचि दिखलाता है तथा उर्मी का आग्रह करता है।

धर्म म एकता और अभेद के भाव उठते हैं और समानता की तरफ उल्लसती हैं। पथ में भेद और विषमता की दरारें पड़ती और बढ़ती जाती हैं। धर्म में मनुष्य दूसरों के साथ भेदभाव भूलकर अभेद का और झुकता है। दूसरे के दुःख म अपना सुख भूल जाता है, या यों कहना चाहिये कि उसका सुख दुःख कोई अलग वस्तु नहीं रहते। दूसरों के सुख दुःख ही उसके सुख दुःख बन जाते हैं। पथ में मनुष्य अपनी

—५० मुखनाल सपत्नी

वास्तविक अभेद भूमि को लुकर भंग की तरफ अधिकाधिक झुकता जाता है। दूसरे का दुःख उस पर असर नहीं करता। अपने सुख के लिए वह लाभाधिक रहता है। या यों कहना चाहिये कि उस मनुष्य के सुख दुःख दुनिया के सुख दुःखों से सपत्नी अलग हो जाते हैं। इनमें मनुष्य को अपना और परतया य दो शब्द पद-पद पर याद आते हैं। धर्म म समाभाविक नम्रता होने के कारण मनुष्य अपने को छोटा और हलका समझता है। उसमें अभिमान सरोखी कोई बात ही नहीं होती। चाहे बिनने गुण तथा सम्पत्ति प्राप्त हो जाय वह अपने को सबसे छोटा ही दखता है। धर्म में ब्रह्म अर्थात् सच्चे जीवन की भोकी होने से उसकी व्यापकता के सामने मनुष्य को अपना पतित्व हमरा छोटा सा प्रतीत होता है। पथ म इससे उल्टा है। इसमें गुण और विभव न होने पर भी मनुष्य अपने को दूसरों से बड़ा मानता है और दूसरों से मनवाने का प्रयत्न कराता है। उसमें यदि नम्रता होती है तो वह बनाबटी होती है। उस मनुष्य का सदा अपने बड़पन का खयाल बना रहता है। उसकी नम्रता बड़पन का शोषण करने के लिए

हाती है सन्ने जीवन की भाँडा न होने के कारण गुणों की अनन्तता तथा अपनी पामरता का भान न होने के कारण पथ में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी गृथा का अनुभव नहीं कर सकता। वह लघुता का चेवक दिखाना करता है।

धम में सत्य की दृष्टि होती है। उसमें सभी तरफ देखने तथा जानने का वैश्व होना है। सभी पक्षों का सहने का उदारता होता है। पथ में ऐसा नहीं होता। उसमें स्यामामास का दृष्टि होती है। वह सम्पूर्ण सत्य को धम ही पक्ष में मान लेता है इसलिए दूसरी तरफ देखने तथा जानने के लिए उपाय भुक्त ही नहीं होता। विरोधी पक्षों को सहने अथवा समझने की उदारता उसमें नहीं होती।

धम में अपना दोष दखन मुख्य होता है और दूसरों के गुणों का ध्यान मुख्य होता है। पथ में इससे उल्टा है। पथवाला दूसरों के गुणों की अपत्ता दोष ही अधिक देखता है और अपने दोषों का अपत्ता गुणों को ही अधिक देखता है। अपने ही गुणों का बखान करता रहता है। उसको आँसों में अपने दोष आने ही नहीं।

धम में केवल पारिव्र पर ध्यान दिया जाता है। जाति, लिंग, उमर, वय, चिह्न, भाषा तथा दूसरा बाध वस्तुओं के लिए उसमें ध्यान नहीं है। पथ में इन बाध वस्तुओं पर ही अधिक

ध्यान दिया जाता है। अनुक व्यक्ति किस जाति का है? पुण्य है या स्त्री? उमर क्या है? वेश कैसा है? कौन-सी भाषा बोलता है? किस प्रकार उठता बैठता है? पथ में इन्हीं बातों पर ध्यान दिया जाता है। इन्हीं को मुख्य मान कर पारिव्र को गौण कर दिया जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि जिस जाति, लिंग, उमर, वेश या चिह्न का पंथविशेष के अनुयायियों में प्रशिक्षण नहीं है उन्हें धारण करके कोई अन्धे चरित्रवाला व्यक्ति भी आ जाय तो वे लोग उसकी तरफ ध्यान नहीं देते। कई बार तो उसे अपमानित करके निकाल तक देते हैं।

धर्म में सारा ससार एक ही चौका है। छोटे-छोटे चौके न होने के कारण उसमें हुआ-छूट या भ्रष्टा होने की बात ही नहीं। यदि कोई बात बुरी समझी जाती है तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना पाप ही बुरा लगता है। पथ में चौकेवाजी इतनी जबदस्त होती है कि हर एक बात में हुआ-छूट की गंध आती है। इसी कारण पंथ वालों की नाक अपने पाप की दुर्गंध तक नहीं पहुँचती उन्हें कितनी दुःख अपने पथ के बादर वालों से आती है उतनी अपने पाप से नहीं। स्वयं जिने स्वीकार कर लिया वही उन्हें मुग्धित लगता है। अपना पकड़ा हुआ रास्ता ही भ्रष्ट दिखता है।

उसने सिवाय सभी बदबूदार तथा सभी मार्ग अपने से घटिया मालूम पड़ते हैं।

सक्षेप में कहा जाय तो धर्म मनुष्य को दिन रात पुष्ट होने वाले भेदभाव के संस्कारों से निकाल कर अभेद की तरफ धकेलता है। पथ इन संस्कारों को अधिकाधिक पुष्ट करता है। यदि दैवयोग से कोई अभेद की तरफ आये तो पथ को सन्ताप होता है। धर्म में दुनिया के छोटे बड़े भगड़े, जर, जोरू, जमीन, छुत्पन, बड़गा आदि के सब प्रकार शान्त हो जाते हैं। पथ इसमें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि भगड़े के बिना धर्म की रक्षा ही नहीं हो सकती।

धर्म और पथ का अन्तर समझने के लिये पानी का उदाहरण लें तो पथ ऐसा पानी है जो समुद्र, तदी, तालाब, कुआ आदि मर्यादाओं से भी अधिक सङ्कुचित होकर हिंदुओं के पानी पीने के पड़ में पड़ा हुआ है। किसी दूसरे व्यक्ति के छूते ही इसके अपवित्र एव भ्रष्ट हो जाने का डर है। धर्म आकाश से गिरते हुए वर्षा के पानी सरीला है। इसके लिये कोई स्थान या व्यक्ति ऊँचा नीचा नहीं है। इसमें एक जगह एक स्वाद और दूसरी जगह दूसरा स्वाद नहीं है। इसमें रूप रंग का भी भेद नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है और पचा सकता है।

पथ हिंदुओं के पड़े व पानी सरीला होता है। उसके लिये अपने सिवाय दूसरे सब पानी असंभव्य होते हैं। उसे अपना स्वाद और अरुता ही रूप अन्धता लगता है। प्राणान होने पर भी पथ दूसरों के पड़े को छूने में रोकता है।

पथ यद्यपि धर्म में से है हाँ उत्पन्न होता है और अपने को धर्म का प्रचार मानता है कि तु हमारा धर्म का घात ही करता रहता है। जैसे जीवित रुधिर तथा मांस में से घना हुआ नल जैसे जैसे बढ़ता जाता है वैसे वैसे रुधिर और मांस का भी पुष्कण पट्टुचना है। इसलिए जब बढ़ हुए नल का काट दिया जाता है तभी हाइ पिजर सुरक्षित रहते हैं। इसी प्रकार धर्म से अलग पड़ा हुआ पथ, चाहे वह धर्म में से ही पैदा हुआ हो, जब काट कर घाग कर दिया जाता है तभी मानव समाज सुखी होता है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि धर्म और पथ में किसी प्रकार का मेल है या नहीं, और यदि है तो किस तरह? इसका उत्तर सरल है। जीवित नल को कोई नहीं काटता यदि वह कट जाय तो दुःख होता है। रुधिर और मांस की रक्षा को भी धक्का पट्टुचना है। वे सड़ने लगते हैं। इसी प्रकार पथ में यदि धर्म का जीवन हो तो हजार पथ भी बुरे नहीं हैं। जितने मनुष्य हैं, चाहे उतने पथ ही जायं फिर भी लोगों का कल्याण ही

होगा। क्योंकि इस में प्रकृति भेद और दूसरी विशयताओं के अनुसार हजारों मित्रवाए होगे पर भी क्लेश नहीं हांग, प्रेम बना रहेगा। अभिमान नहीं हांग, नम्रता बनी रहेगी। अनुभाव नहीं हांग, मित्रता कायम रदगा। उल्लेखना नहीं हांगी, क्षमा-भाव स्थिर रहेगा। पथ पहले ये, अब हैं और आगे रहेंगे। उनमें सुधारने या करने लायक इतना ही है कि उससे अलग पड़े हुए धर्म के तत्व को फिर से उसमें ढाल दिया जाय। हम किसी भी पथ को मानें किन्तु उसमें धर्म के तत्वों को सुरक्षित रखते हुए ही उसका अनुसरण कर। ग्रहिसा के लिए हिंसा न करें। सत्य के लिए असत्य न बोलें। पथ में धम के प्राण फूटने की शत यही है कि हमारी दृष्टि सत्य का आग्रह करने वाली बन जाय। रुद्धेय में सत्या मही क लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) स्वयं जिस बात को मानते या करत हां उसकी पूरी समझ होनी चाहिए। अपनी समझ पर इतना विश्वास होना चाहिए कि दूसरे को स्पष्टता और दृढ़ताय साथ समझा सकें।

(२) अपनी मान्यता के विषय में हमारी समझ तथा हमारा विश्वास यथार्थ है, हमकी कमीटी यही है कि दूसरे को समझाते समय हमें तनिक भी आवेश या क्रोध न आवे। दूसरे को समझाते समय अपनी मान्यता की विशेष

पता के साथ यदि कुछ त्रुटियां भी मालूम पड़ें तो उन्हें भी बिना सकोच स्वीकार करता जाय।

(२) जिस प्रकार अपनी दृष्टि समझाने का प्रयत्न चाहिए, उसी प्रकार दूसरों की दृष्टि समझने के लिए भी पूरी उदारता तथा तत्परता होनी चाहिए। एक वस्तु क विषय में तितने पक्ष तथा जितने दृष्टिकोण हो सक सभा की समाप्ति करके बलाबल जानने का वृत्ति होनी चाहिए। इतना ही नहीं यदि अपना पक्ष निबल और भात मालूम पड़ तो उसका त्याग करने में इतनी प्रसन्नता होनी चाहिए जितनी स्वीकार करते समय भी न हुई थी।

(४) सम्पूर्ण सत्य दश, काल अथवा सम्कारों से सीमित नहीं होता। इस लिए प्रत्येक पहलू में जो खड सत्य रखा हुआ है, उन सबका समन्वय करने की वृत्ति होना चाहिए।

पथ में धम नहीं है इसीलिए पथ समाज और राष्ट्र के लिए घातक बने हुए हैं। जहाँ समाज और राष्ट्र की एकता का प्रश्न आता है वहाँ पर निःप्राण पथ आड़े आ जाते हैं। धम जनित पर्या की सृष्टि तो मानव समाज तथा विश्वमाय को एक करने के लिए हुई थी। इस काय करने का पथ दावा भी करते हैं। किन्तु हम देख रहे हैं कि पथ ही हमारे एक होने और मिलने में रोका अटक रहा है। पथ का अर्थ और

बुद्ध नहीं है। उसका अर्थ है, धर्म व नाम पर उत्पन्न तथा पुण हुए हमारे मासिक गकोच का मिथ्याभिमान जब लोक-कल्याण या राष्ट्र-कल्याण के लिए एक सामान्य सी बातको प्रचलित करना होता है तो पथ व जहरीले और अनुचित मस्कार आकर कहत हैं—सावधान ! तुम ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा करोगे तो धर्म रसातल में चला जायगा। लोग क्या समझेंगे और क्या कहेंगे ? कोई दिगम्बर या श्वेताम्बर या अध-कोई अपने पक्ष की तरफ से चलते वाले भगड़े में भाग न ले अथवा पैसा होने पर भी उस भगड़े के पड में दान देने से इन्कार कर, न्यायालय में प्रभाव होने पर भी साड़ी न बने तो उसका पथ उमड़ लिए क्या करेगा ? मुसलमानों का साथ जत्या हिंदू-मन्दिर के पास से तानिया ले जा रहा हो और कोई सच्चा मुसलमान हिंदुओं की भावना व दुखाने व उद्देश्य से दूसरे रास्ते जाने को बंद या गी इत्या करने की मनाही करे तो उस मुसलमान के साथ पथ वाले कैसा व्यवहार करेगा ? एक आर्यसमाज का उन्म कभी मन्ची दृष्टि से मूर्त के सामने बैठ जाय ता उसका समान पथ उमड़ लिए क्या

करेगा ? इसप्रकार पथ सत्य और एकता के आड़े आ रहे हैं। अथवा या कहना चाहिए कि हम स्वयं पथमय सरकार के सम्म से सत्य और एकता के साथ द्रोह कर रहे हैं। इसीलिए पथ का अभिमान करने वाले तथा बड़े बड़े माने जाने वाले धर्मगुरु, पंडित या पुरोहित कभी आपस में नहीं मिल सकते। वे कभी एकरम नहीं हो सकते। जबकि माधारण मनुष्य आपसी में मिल सकते हैं। आप तैलगे कि एकता और लोक-कल्याण का दावा करने वाले पथ व गुरु हा एक दूसरे से अलग-अलग रहते हैं। यदि ये धर्मगुरु एक हा जायें अथवा एक दूसरे का आन्द करने लों, साथ मिल कर काम करें और भगड़े को पैदा हो न होने दें तो सम्भना चाहिए कि अब पथ में धम आगया है।

हमारा कतब्य है पथों में धम को लावें। यदि एसा न हो सके तो पथों को मिटा दें। धर्म-सत्य-पथ की अपेक्षा विना पथ का मनुष्य या पशु होना भी लोक-हित की दृष्टि से अधिक अच्छा है। इसमें किमी की विवाद नहीं हो सकता।

[अनु इन्द्र, एम ए]



जय हिन्द

तार—“मिन्न” इन्दौर

फोन नं ५८८१ और ६५७

हर प्रकार के

आकर्षक और मजबूत

कपड़ों के लिये

हमेशा याद रखिये

दी कल्याणामल मिल्स

लिमिटेड इन्दौर

सेवा और स्वदेशी हमारा ध्येय है

मेनेजिंग एजन्ट—

मेसर्स—तिलोकचन्द कल्याणामल

एण्ड कम्पनी, इन्दौर

तार का पता — राजशॉप

टेलीफोन—४१३

भोजन शरीर के लिये जितना आवश्यक है उतना ही
स्वास्थ्य और शरीर-रक्षा के लिये वस्त्र भी आवश्यक है।
जीवन की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये -

**दी राजकुमार मि. लिमिटेड,
इन्दौर**

आपकी सेवा में सदैव प्रस्तुत है !

—: यहाँ :—

सर्व प्रकार की आवश्यकताओं के लिये जन साधारण की रुचि
का सस्ता एवं उत्तम नित्य के व्यवहार योग्य टिकाऊ और
सुन्दर सर्व प्रकार का कपड़ा समय और सुविधाजनक
उपलब्ध हो सकेगा।

हमारी विशेषताएँ—

हरक, वायल, सफेद रंगीन एवं प्रिंटेड, लट्टा, मलेशिया,
शॉटिंग, पक्के रंग की सुन्दर डिजाइनदार छीरें आदि।

मैनेजिंग एजेन्ट्स —

सर सरूपचंद हुकमचंद एंड कंपनी

बलाय शाप - एम टी बलाय मार्नेट, इन्दौर

रे मन तेरी को कुटेव यह ।

रे मन तेरी को कुटेव यह
मरन-विषय में धाये है ।

रे मन० ॥

इन्ही में वगलू अनादि म,
निज स्वरूप न लखा वे है ।
पराधीन छिन-छिन समाकुल,
दुरगति विपति चरवाये है ।

रे मन० ॥१॥

परस विषय के कारन चारन,
गरन परन दुख पाये है ।
रसना इन्दीरस भूप जलमे,
कटक कठ छिदाये है ।
गंध लोल पङ्कज मुद्रित में,
अलि निज मान खपाये है ।
नयन विषय वरा दीपशिखामे,
धंग पतंग जराये है ।

रे मन० ॥३॥

करन विषय वशाद्विरन अरनमें,
खलकर धान लुभाये है ।
दौलततज इनको जिनको भज,
यह गुरु सीख गुनाये है ॥
रे मन तेरी को कुटेव यह
मरन में धाये है ॥

रे मन० ॥४॥



इक अडिग विरवास पर, डग भर रहा हूँ—बढ़ रहा हूँ ।
सपन, समुचित सजल निशि मे, सतत सत्वर चल रहा हूँ ॥”

तन विकम्पित, मन व्यथित है,
प्राण का प्रति-पल कुपित है,
जि-दगी या स्वर यथित है,
मजिलों का पथ अमित है,

मैं किसी परितप्त प्रण की, प्रखरता ल चल रहा हूँ ।
इक अडिग विरवास पर, डग भर रहा हूँ—बढ़ रहा हूँ ॥”

दिग-दिगतों की प्रवाही-
आग मुझको घेरती है,
लप लपानी सपिणी सी,
काल निशि भी भूलती है

इस विभीषण धरता में, भी विभावित चल रहा हूँ ।
इक अडिग विरवास पर, डग भर रहा हूँ—बढ़ रहा हूँ ।

बहुत है शीघ्रिय मुझ में,
विवशता है-रिक्छता है,
दृष्टि के विस्तार में तो
विषमता है-कुटिछता है,

रवास की भानी डगर पर, मैं अनापद चल रहा हूँ ।
इक अडिग विरवास पर, डग भर रहा हूँ—बढ़ रहा हूँ ।

जानता हूँ यों कि बेधस,
मौत के क्षण जी रहा हूँ,
अनमनी इस जि-दगी से,
दूर बहता जा रहा हूँ ।

पर प्रकम्पित पथिक, सा मैं दामिनी लख चल रहा हूँ ।
इक अडिग विरवास पर, डग भर रहा हूँ—बढ़ रहा हूँ ॥”

है विजय की रागिनी
दुत-गामिनी-उमादिनी-सा,
अवनि-अम्बर मे तरंगित,
अपरिमित व-लोलिनी सी ।

इन निनादित लहरियों पर, मैं विचित्रि-
इक अडिग विरवास पर, डग भर रहा हूँ ॥”

सत्य कैसे खोजा जाय ?

हमारे जीवन में भूलें भरी पकी हैं। यह कहना बढ़कर कहना नहीं होगा कि भूलों से ही हमारा जीवन बना है।

हमारे जीवन में अंधेरा है। हम अंधरे में ऐसे जी रहे हैं मानों उजाले में हों।

इस भूल भरे और अंधरे में बौतने वाले जीवन में एक ही राखी है कि इन भूलों और अंधरेमें हम जिसको ढूँढते फिरते हैं वह वेदद चमकदार और सत्य है। यह भी अशुद्धा ही है कि सत्य और हमारे बीच में पड़े हुए पर्दे धीरे धीरे उठते हैं और बारी-बारी से उठते नहीं तो हम एक हम सत्य की चमक देखकर अंध ही जाते और कुछ भी न देख पाते।

हमारे मस्तक की मालदारी हमारा सनापी जानी है कि हमारा सत्य की जानकारी कितनी है। और मालदार बनना किसे नहीं मुहाना। इसलिये मालदार बनने के लिये इससे बड़ा और कौन धंधा हो सकता है कि हम सत्य की खोज में लग जायें।

तरकी देवी की हड्डिया सत्य की बनी हुई हैं। उनका मज्जा और चरबी सत्य की बनी हुई है। उनकी मांस पेशियां सत्य की बनी हुई हैं। उनमें सत्य का ही गून बहता है। उनका कान आँसू, जीम, सब सत्य है और

महात्मा भगवानदास

सत्य ही उनकी जान है। सत्य और उन्नति एक ही चीज है। यह सुनकर अचरज नहीं होना चाहिये कि हम सबको पैदा होते ही सबसे पहले सत्य की भूल लगती है और वह क्या भरते दम तक कभी नहीं मिट पाती है, बढ़ती ही रहती है। उस भूल को मिटाने के लिये जब कभी हम एक कण भी भिन्न जाता है तो हमारी सुरी का ठिकाना नहीं रहता। उस सत्य के एक कण से ही हम बुरे से पले बन जाते हैं, नीचे से ऊपर उठ जाते हैं, अपवित्र से पवित्र बन जाते हैं। हमारा आदमी के रूप में पैदा होना सफल हो जाता है।

अब एक आपबीती सुनिए—

“सन् १८६६ का जिक्र है, मैं था बारह बरस का। मन्दिर में शास्त्र सभा हो रही थी। उस सभा में मैं अकेला ही सबसे छोटा था। मुझसे बड़ा एक और लड़का था, जो सोलह बरस का होगा। भादा का आखरी दिन था। उस दिन प्रतिज्ञा लेने का रिवाज पुराना है। रिवाज की रस्म निमाने के लिये शास्त्र-सभा के खनम होने पर प्रतिज्ञा लेने का नम्बर आया। सोलह बरस का उस लड़का ने तो यह प्रतिज्ञा ली कि वह एक महीने तक दिया नहीं जलाया करेगा। उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर उसका बाप हँस पड़ा

भी हँस दिए। चाप तो यों हँसा कि दूकान का दिया जलाने का काम उस लड़के ने सुपुर्द था और बस वही एक काम उसके सुपुर्द था। उमने एक काम न करने की प्रतिज्ञा लेकर उससे भी छुट्टी पा ली। इस काम की वजह से शामकी खेल में बाधा पड़ती थी इस लिए वह इस के सिवा और क्या प्रतिज्ञा लेता ? और लोग यों इसे कि वे यह समझ ही नहीं पाए कि यह अनोखी प्रतिज्ञा किस लिए ली जा रही है।

अब मेरी बारी आई। मने उस दिन के लिए निर्जल व्रत रखने की प्रतिज्ञा का। यह बात दिन के मध्य तक की है। शास्त्र सभा ने पहले मन नारते के तौर पर भी कुछ चीजें ली थी। उस दिन घर में, मां, मेरी मां और मेरी बड़ी बहन थी और काइ घर पर नहीं था। मा और बहन पहले ही से उस दिन कुछ न खाने का व्रत लिए हुए थीं इस लिए शास्त्र सभा में जाने के पहले मेरे लिए हलवा, पूड़ी और शाक बनाकर तैयार कर दिया गया था पर अब मैं भी प्रतिज्ञा ले चुका था इसलिए उस खाने का कोई उपयोग न रह गया था।

मंदिर में जिस वक्त प्रतिज्ञा ली थी, मेरा मा और बहन दाना ही वहाँ मौजूद थीं। पर उनमें से किसी ने मुझ प्रतिज्ञा लेने से नहीं रोका क्योंकि ऐसा करना समाज की तरफ से बुरा समझा जाता है।

घर आकर बहन ने तो कुछ समय भाया-बुभाया भी पर मैंने एक शब्द भी नहीं कहा।

मेरे ऊपर व्रत का बड़ा गहरा रंग चढ़ा और इतना गहरा चढ़ा कि मैं अपने साथियों के साथ खेलने तक की नहिं गया। घर में बैठ ही धर्म की किताबें पढ़ता रहा। तीन बजे तक कोई तक लीफ नहीं हुई। उसके बाद से पित्त बढ़ना शुरू हुआ और पीले रंग की हल्की सी कै हुई। बहन दीदी दीदी आई और उसने मुझें कुल्ला कराना चाहा पर मने कुल्ला करने से इंकार कर दिया क्योंकि मैं यह समझता था कि कुल्ले के बढ़ाने पानी मुँह में नाना भा व्रत तोड़ना है। इसलिए मने हाथ धोकर हॉट मर पौद्य लिए। एक कै स ही मेरी तबियत निढाल हो गई। बहन ने मेरे लिए चारपाई बिछा दी। मा यह सब देख रही थी पर वह बिलकुल कुछ न बोली। आध घंटे के बाद फिर कै हुई। फिर मा बहन न ही समाला उस कै के बाद थोड़ा चैन मिला। घंटे भर के बाद फिर कै हुई और खूब पित्त गिरा। अब मा पास आकर खड़ी हो गईं पर और सब काम बहन ही करती रहीं। जब फिर मैं चारपाई पर लेट गया तो मा ने मेरी बहन को किसी काम के लिए बिग्री के घर भेज दिया और उसके चले जाने के बाद वह मुझे समझाने बैठ गईं।

‘देखो बेग, तुमने कल पाँच बजे माना खाया था उसके बाद अब तक खाना नहीं खाया और देखो अब पाच बज रहे हैं चौरबीस घंटे हो गए। चौरबीस घंटे का एक दिन होता है इसलिये तुम्हारा एक दिन का व्रत पूरा हो चुका।’

‘पर अम्मा, व्रत तो मैंने नौ बने लिया। कल नौ बने चौरबीस घंटे होंगे।’

‘यह तो ठीक है पर तुम्हारी वरियत इतनी निडाल हो गई है कि व्रत में चिन में जितनी शांति रहनी चाहिये उतनी शांति तुम अपने मन में नहीं रख सकते।’

‘अम्मा यह तो तुम ठीक कह रही हो पर व्रत तो दुख मानकर ही निभाए जाते हैं। शास्त्र में तो सारी ब्यापण ऐसे ही पढकर सुनाई जाती हैं।’

‘बेटा, यह तो तुम ठीक कहते हो। पर व्रत का आनंद तो उस वक्त चल देता है जब चित्त व्रत से डिगने की बात सोचने लगता है। अब तुम ही बताओ क्या तुम्हारे मन में इस वक्त यह बात नहीं आ रही है कि अगर कोद न हो तो तुम चुपके से अगर और कुछ न मिले तो पापा ही पौ लो।’

‘हाँ अम्मा ऐसी बात तो मन में आ रही है। मेरा जी तो बार बार कुछ खाने को भी मचलता है।’

‘तो मैं शरबत खाऊँ।’

‘ना अम्मा, शरबत पीने से तो व्रत टूट जायगा।’

‘हा टूट जायगा, पर तुम्हारे मन ने तो व्रत बहुत पहले से तोड़ रखा है। तुम्हारी चालाकी व्रत का खेल कर रही है।’

‘अम्मा, मैं तुम्हारी बात तो नहीं समझता। पर इतना जरूर जानता हूँ और कह सकता हूँ कि मेरा मन खाने के लिये बहुत मचल रहा है। और अम्मा मैं सच सच कहता हूँ कि मैं तुमसे तो बिल्कुल नहीं डरता। तुम्हारे सामने तो मैं शरबत क्या, खाना भी खा सकता हूँ पर जीजी के सामने तो ऐसा नहीं कर सकता। जीजी चाह मेरी हँसी न भी उड़ाए पर जीजी यह सब बात मेरे साथियों तक जरूर पहुँचा दगी। और फिर मेरे साथी मुझे क्या समझेंगे। मेरी खिल्ली उड़ाएंगे और और खमानी, जिसने दिया न जलाने की प्रतिज्ञा ली है वह तो मुझसे कहाँ आगे बढ़ जायगा और मेरी इसी करगा।’

‘तो क्या तुम, इसी के डर से और तारोफ के लोभ से अपने मन को बिगड़ने दोगे? और यह ठीक है कि अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारी बात किसी तक न पहुँचने दूँगी। पर मैं इस बात में तुम्हारा भला नहीं समझती। हाँ यह ठीक है कि मैं जीजी की तरह से तुम्हारी बात तुम्हारे साथियों से नहीं कहूँगी। मैं जिस तरह कहूँगी

उससे तुम्हारे साथियों में तुम्हारी इज्जत घटेगी नहीं। सचाई से कहीं इज्जत घटती है, उससे तो इज्जत और बढ़ती है।'

'अम्मा, तो क्या तुम भी मेरे साथियों से मेरे खाने पीने की बात कह दोगी ?'

'नहीं, तुम अगर चाहोगे तो नहीं कहूँगी पर मैं यह नहीं चाहती कि तुम यह चाहो कि मैं तुम्हारे साथियों से यह बात न कहूँ।'

'अम्मा, जब तुम उससे कहोगी तो वह मेरा हँसा नहीं उड़ाए गे।'

'मैं जिस तरह कहूँगी, उससे तो ऐसा मालूम होता है कि वह तुम्हारी हँसी नहीं उड़ाए गे। और अगर वे तुम्हारी हँसी उड़ावें भी तो क्या तुम हँसी उड़ाने से बचना के लिए भूठ बोलना पसन्द करोगे ? फिर क्या मन का फायदा रह जायगा ?'

'अम्मा, तुम बात तो बिलकुल ठीक कहती हो पर मेरा मन भूठ बोलने से इतना नहीं डरता जितना अपनी हँसी उड़ती देखने से।'

'बेटा, इस बुरे धर्म का रिवाज पड़ गया है और इसी रिवाज की तुम्हें भी आदत है। इसलिए भिक्कू होती है। जब सच बोलने की आदत हो आयगी और इसी उड़ाने की बरदाश्त तुम में आ जायगा तो फिर भूठ बोलने भिक्कू हुआ करेगी और इसी उड़ने

का कोई डर नहीं रह जायगा। देखो अब तुम सोचो नहीं, शबंत पीकर अपना मन पूरा करलो और फिर यह मत तोड़ना भी कहाँ है। चौबीस घंटे तुमको ही ही गए। इसलिए एक दिन पूरा हो गया। बस अब तुम शबंत पी लो। दो एक घंटे के बाद रबड़ी जैसी चीज खा लेना।

'अम्मा, तुम तो मेरा मन ललचा रही हो।'

'न, बेटा, ऐसा नहीं। मैं तुमको सच का पाठ दे रही हूँ। मैं अपने बेटे का मन क्या ललचाने लगी ?'

'अम्मा, तो जीजी नहीं हँसिगी ?'

'जरूर हँसिगा। पर जब मैं उसे समझा दूँगी तो वह नहीं हँसिगी।'

'और मेरे और साथी नहीं हँसिगे ?'

'वे भी जरूर हँसिगे। उनको मैं समझाना पड़ेगा।

'और तुम समझती हो कि तुम उनको समझा लोगी।'

'हो सकता है वे मेरे समझाने न समझें। पर इससे क्या ? वे समझें या न समझें। मुझे तो अपने बेटे का समझाना है। और उसे सच्चा और पक्का बनाना है। अब तुम बताओ कि तुम भी मेरी बात समझ गये कि नहीं।'

'अम्मा, मैं समझा तो कुछ नहीं है, मेरा मन तुम्हारे कहने पर शबंत पीने को तैयार है और रात को कुछ खा लेने के लिए भी तैयार है।'

‘हा वह तुम्हारे लिये मुश्किल है कि तुम समझने और समझ जाने पर भी यह समझ सको कि तुम समझ गए हो और यह तो और भी मुश्किल है कि तुम मुझे बता सको कि तुम समझ गए हो। पर मने यह समझ लिया है कि तुम्हारा मन सचाइ को समझ गया और यह सचाइ मन से नीचे उतर कर वहाँ जा पहुँची है जहाँ से अब वह जल्दी भागने वाली नहीं।’

‘अम्मा न जाने तुम क्या कहती हो। मेरी समझ म नहा आता। मैं तुम्हारे कहने से खा-पी लूँगा और मेरे साथी जब मुझसे पूछेंगे तो मैं डरे बिना उनसे सब सब कह दूँगा। और वह फिर मेरी हसी उड़ायगे, तो मैं कह दूँगा कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। अम्मा ने कहा और मने खा लिया।’

‘अपने साथियों के साथ तुम्हारा यह तर्क तो ठीक रहगा ही पर क्या तुम्हारे मन में ऐसी धान नहीं उठती कि तुम झूठ न बोलकर अब निडर होकर सब बोल सकोगे।’

‘अम्मा, यह तुम कह रही हो इसलिए मान लेता हूँ। मेरे मन पर तो अभी भी व्रत न तोड़ने का धर्म ही सवार है।’

‘बेटा, वीं नहीं यों कहो कि मेरे मन पर तो अभी व्रत न तोड़ने का ही झूठ सवार है।’

मैं अम्मा की यह बात सुनकर एकदम गिल उठा। पर मैं उस वक्त यह नहीं समझ पाया कि मैं क्यों सिल उठा था। मैं अम्मा के उस उपदेश

का पूरा पूरा तत्व तब समझ पाया जब मने धर्म व एक बड़े ऊँचे प्रथ में यह लिखा देखा कि ‘जोश में आकर बाल बुद्धि से या कम जानकार गुरुओं के उपदेश से या गुस्ते में आकर जो प्रतिज्ञाए कर ला जायें उनको तोड़त हुए अगर डर लगे तो वही समझना चाहिए कि धर्म का सच्चा ध्यान तुममें नहीं है।’

मैं नहीं जानता मेरी अनपढ़ माता म इतना ऊँचा तक कहाँ से और कैसे आगया। मैं इसके सिया क्या कह सकता हूँ कि उसम सत्य क समझने की सहज बुद्धि थी। एक नहीं अनेक बार उन्होंने मुझे ऐसी सीख दी जिनकी मैं उस वक्त तो उसकी मा के नाते ही मान लेता था। पर बड़े होकर ही मैं समझ पाया कि मेरी मा की सीख हर तरह से इस योग्य थी कि उसको गुरु की सीख के समान आदर दिया जाय और वैसा आदर मने दिया भी। उहीं सीखों के बल पर आज मनिना किसी भिन्नक के यह कह सकता हूँ कि अपने आप अपने आदर तक करने से सत्य जरूर खोजा जा सकता है। हमारे तबुँ सत्य की खोज में बड़े मददगार साबित होते हैं। सत्य खोज की चीज है और वह खोजने से ही मिलती है।

सत्य के खोजने में किसी योग्यता की शर्त लगाता खोजी को खोज से रोकना है। हर आदमी को अपनी योग्यता के अनुसार सत्य की खोज में

लगने देना चाहिए। जब तक इस रास्ते में समाज व्यक्ति को पूरी आजादी नहीं देगा तब तक यौहारी सचाई का कुछ हिस्सा भले ही आदमी के हाथ लग जाय पर पारमार्थिक सत्य का एक अंश भी उसके हाथ न लग पायगा।

जिस आदमी को किसी तरह की रोक नहीं है, जिसके लिए कोई बाध द्विपी हुई नहीं है जिसको कुछ भी करने की मनाही नहीं है, वह आदमी पारमार्थिक सत्य को जितना जल्दी पा सकता है उतनी जल्दी कोई नहीं पा सकता। पुराण हमें चिला चिला कर यही इशारा कर रहे हैं कि पुण्य-कर्मल पाप की कौचक से ही रिलता है। अंधेरे से ही धबरा कर हम प्रकाश की ओर भागते हैं। अंधरा हम म प्रकाश की चाह पैदा करता है।

जो सत्य एसा है जिसके समझने की किसी के लिए भी मनाही है वह सत्य ही नहीं हो सकता। जिस दृष्टता के पास किसी एक को भा जाना मना है, वह देवता नहीं बनावटी दृष्टता है।

बस सत्य की खोज में लगने वाले को यह समझ ही लेना चाहिए कि वह खोज के रास्ते में इस लोह और परलोक के दह से कभी न धबरायगा। इतना उसे और भी गमन लेना चाहिए कि पारमार्थिक सत्य कोई एसी चीज नहीं है जो एकांत में बैठकर पहाड़ों की गुफा में आसन लगा कर,

वे मतलब सर्दी, गर्मी, बरसात के हुल सहकर सिर्फ मनन चिंतन से हाथ आ जाय, उसके लिए तो उसका मस्तक मन के साथ-साथ तन से जुड़े हाथ और पैरों से एसा ही काम लता पड़ेगा जैसे मजदूर अपने पेट के लिए, रोटी जुटाने के लिए, उभरे काम लता है। मजदूर जिन हाथों से रोटी जुटाता है, सत्य का खोनी मस्तक मन की मदद से उही हाथों से सत्य को खोज निकालेगा।

यह ठाक है सभी समझता ने और सभी महापुरुषों ने सत्य खानने के लिए हजारों वर्ष से चले आए रियाज के अनुसार पहाड़ों की गुफाओं में आसन जमा कर, शिलाओं से अपना माथा टकराया है। पर अंत में वे इसी नतीजे पर पहुंचे कि उनका यह चिंतन समय का बर्बाद करता ही रहा। अन्य तो उनको समाज के भीतर प्रवेश करके ही हाथ आया। एक श्रमि ने क्या ही अच्छा कहा है कि इच्छाओं पर बाधू पाना ही तपस्या है, दह की तपस्या तो दह को बेबाधू कष्ट देना है।

इच्छाएँ बाधू में आई नहीं कि मस्तक खिला, मनमें विशालता आई, उदारता ने जगह पाई और हाथ आर पाव में सरसराहट आई और फिर वह इस ढंग से बड़े कि सत्य का कोई न कोई हिस्सा उसके हाथ लगा।

ओ ! मानवता के कर्णधार ! !

(प्रकाश "उपल")

ओ, मानवता के कर्णधार धरती पर आ जाओ नीचे !

हे ठीक कि, उस युग में तुमने
ही हमको राह बताई थी,
पृष्ठा द्वेष हिंसा के शव—
पर जीवन-ज्योति जगाई थी,
युग बीते तुमको देवों की
दुनिया में सोते पड़े पड़े
के आज प्रतीहामय आँसु—
तेरे चिह्न पर आज खड़े;

हम गीत तुम्हारे गाते हैं, हो समाविश्य आँसु नीचे !

तुम जगो ! जगो ! हम महानारा
के आलिंगन में बंदी हैं।
स्वयं मनुजता के शव पर
मानव मानव प्रतिद्वंदी है
तुम महानारा के पहले ही
धामो जीवन के वदन क,
आओ, तोड़ो गोपित पीड़ित-
मानव के उलझे बंधन को,

सिर पर धर दो आ वरद इरत, आँसु से मानवता सींचे !

उसकी याद

(श्री ३३ नविहारीलाल पाण्डेय)

उसकी आज याद आइ है ।

जन मरान रक्षायण भावना से जिसने जग को दुलराया ।
ज्ञान कर्म का पाठ पढ़ाते थीकी न जिसकी निर्मल काया ।
जैनधर्म का दीप जलाया, नवयुग के आगम में जिसने ।
मानवता का सच्चा पथ दिखाया नर पशुओं की जिसने ।

पाटी भेदभरी खाई है ।

उसकी आज याद आइ है ॥

चेतन क्या ? जड़ तरु को जिसने, 'दया करो' आदेश सुनाया
धूर हृदय के मरुस्थलों में, शान्ति-सुधा का स्रोत बहाया ।
गिरि, वन, सरिताओं का अरुण सवमें जीवन गान भर गया
सूरज, चांद, सितारों की आभाओं का अभिमान भर गया ।

जिससे धरती अमराई है ।

उसकी आज याद आइ है ।

स्वतंत्रता की मुक्त रश्मियों ने जिसका शृंगार किया था ।
अणु अणु ज्योतिर्मय कर जिसने अखिल विश्वको धार किया था
सर्वादयता थी, 'सब सुखिन भवतु' की सार्थकता थी ।
जिसमें समता ममतामय जनप्रियता की अद्भुत जमता थी ।

जग में जिसकी अग्नाइ है ।

उसकी आज याद आइ है ।

जुलकर ही यहा काम चल सकता है। सहयोग यहा अनिवार्य है।

नकि एक पैदा हुआ है, पर इसलिए कि यथासम्भव किसी के भी प्रति वह दूसरा न रहे। सभी प्रकार ने कहा— “परस्पो पग्रहो जीवाना” एक दूसरे के काम आना जीव का लक्षण है। मनुष्य के इस स्वभाव में से मनुष्य को जन्म मिला।

इस सामाजिकता के उदय के साथ वस्त्र का उदय हुआ। पशु-पक्षी वस्त्र का आवश्यकता से मुक्त हैं क्योंकि उनमें खचेष्ट सामाजिकता नहीं है। उनमें लड़ा और मर्यादा की भावना ही नहीं है। वे स्वच्छन्द हैं। मनुष्य मर्यादाशील प्राणी है। उसका समाज है, जिसमें श्रेष्ठियाँ हैं छोटे बड़े हैं, मान सम्भ्रम है। मनुष्य समाज में सबके अधिकार बराबर नहीं है, कतब भेद से उनके अधिकारों में भी भेद है। उनमें परिवार भावना है और सम्बन्धों में दायित्व और पवित्रता की कल्पना है। शिक्षा-जन्म से उनमें गुरु शिष्य का भेद है। और एक चरण छूता दूसरा मायेपर रखकर उसे आशीवाद देता है।

यह जो मर्यादाशीलता का उद्भव और विकास है, यही क्या मनुष्य जाति की अर्थात् सृष्टि और सभ्यता नहीं है, इसी के साथ वस्त्र की सस्था ने विकास पाया है।

इस दृष्टि से वस्त्र के विरुद्ध कुछ

कहने का आवश्यकता नहीं है। वह लोक-जीवन के लिए अनिवार्य है। उससे मर्यादाशीलता और शुचिता का रक्षण होता है। वह वासना पर आवश्यक है। पर नहीं, यन्त्र वहीं तक नहीं रहा है। वासना को ढकने नहीं, दिखाने और बढ़ाने तक का साधन वह होने लगा है। यन्त्र की सस्था इधर आकर तो अब रोग की गाँठ हो पड़ी है कारण है मेरी समझ में हम मनुष्यों की समानता को अपनी परिधि मान रहना और समष्टि-दृष्टि को भूल बैठना।

समाज को परिधि मानकर चलना मेरी दृष्टि में भ्रातृ है। मेरा मानना है कि उसके कारण हमने बहुत रोग अपने बाच बसा लिए हैं और सभ्यता अपनी मौलिक आवश्यकता से दूर पड़कर इतनी कृत्रिम होती जा रही है कि पालड बन उठी है। आवश्यकता है कि उस सभ्यता को फिर अपने मूल आदेश से जोड़ा जाय और उसे स्वस्थ किया जाये।

समाज में मान और मान्यता प्राप्त करना यदि उन्नति का लक्ष्य हो तब तो वस्त्र को आवश्यक रूप में इसका साधन बनाया ही जायगा। तब मनुष्य की चेष्टा वस्त्र की सस्था को जटिल बनाने में लगेगी।

यहा तक कि वह एक समस्या और शोषण का केन्द्र बन रहगी। लोग हर क्षण नया फैशन निकालेंगे और बीते

वृत्त का फैलाना पुराना पड़ जायगा। नतीजा यह होगा कि लोग उस दौड़ में बलों का ढेर पास रखकर भी सतोप रख सकेंगे कि वे काफी आधुनिक हैं। हर कपड़ा घुल चलने के साथ पुराना ही जायगा और नये की माग होती जायगी डिजाइन और कट के नये-नये श्रविकार होंगे और न जाने कितने लोगों की बुद्धि इसी में लगी रहा करेगी। इसके कारण दूसरी ओर धन का अकाल होगा और लाज और शीत से उन दकने को भी वे चीथड़ा ना पायेंगे।

यह चमक-दमक का आसुरी सम्यता होगी और वहाँ वैभव के शिखर आसमान को चूमना चाहेंगे। हीरा मोती, सोना चांदी से बस्तियों को मड़ा जायगा कि उधर अनेक नगे रहें, जिन्हें रहने को ठीर और खाने को कौर न हो।

यह सम्यता आदमी को परिग्रह के सचय में सुख दिखानेगी और अतस्य सहानुभूति और अहिंसा की भावना को चूसती जायगी। मनुष्य तब अपने स्वाध में रत होकर शोषक बनेगा और अपने को सम्य मानेगा।

सामाजिकता को अतिम समर्पण और उसी को चरम धर्म मानकर चलने में यह खतरा है ही। भौतिक दर्शन उसी में हमें ला पटकता है। अगर दीवनेवाला पदाथ ही सच है तो उसका भोगोपभोग जीवन का चरिताथ बनता है तब पदार्य मात्र भोग होता

है और मनुष्य उसका भोका ठहरता है। इस वृत्ति में से स्वार्थ को महत्व मिलता और सम्मदा आदम्बर का संचय होता है।

किन्तु म मानता हूँ कि सामाजिकता से विरो इसी वृत्ति में मन्वी सामाजिकता का बीज नहीं है।

समाज में उससे विपम प्रथिपा पड़ती है। विरोधी स्वार्थों को लेकर उनसे बर्ग, समूह, और खलतारें बानी हैं जो अपनी अहता में दूसरों से स्पर्धा ठानती हैं। इससे विग्रह और विस्फोट को जन्म मिलता है।

वे लोग जो लौकिकता की परिभाषा में ही धम को देखते हैं जाने अनजान इस स्वाध निग्रह की आच में हथा पहुँचाते हैं। अत आवश्यकता है कि उस आदर्श को हम सदा स्मरण में रखें जो समाज पर आकर नहीं रुकता आगे समष्टि तक जाता है, जो अपनी अनुभूति में मानने पर समाज को जैसे ही अपनाता चाहता है जैसे मानव समाज को।

समाज के लिए बल आवश्यक है, किन्तु समष्टि के पत्र में उस बल का भला क्या अर्थ रह जाता है? सूर्य क्या पृथ्वी के प्रति अपने को ढकेले, या पृथ्वी को सूरज से घुषट ले ले?

आकाश के चमकते तारे, बहती वायु, खुला आकाश, भूमते पेड़ और तरंगित सागर, क्या सब भी बल छोड़ें और परिनें? तब वह पुरुष ही भला

कैसे अपने को कपड़ों में मूढ़े की जिसे उन सब में रसलीन और सत्स्वर हो रहना है। दिग्गत व्यापी श्रवर उमें श्रवर है। कपड़ा जो तन को, धूपने स्वास्थ्य और वायु की थपक से वचित रखना है, क्यों उसके लिए आवश्यक है, जिसे वायु कगाम बहना और धूपके साथ खिलना है, जिसके प्राण्य श्रणी च्यति में कोई परिधि नहीं मानते और लोहान्त को छुए बिना जिसकी सहायभूति चीन न पायगी-एसा महा अहिंसक पुण्य किससे बचने को कपड़े पहिने !

जिसे सबक प्रति खुला रहना है सबको अपने में ले लेता है, वह कैसे वस्त्र का व्यवधान सहै ! क्या वस्त्र श्रतुओं से और सत्यताओं से अपने को बचाने का निमित्त ही नहीं है ! क्या वह भीति का प्रतीक नहीं है कि जिसका सामाजिक रूप लज्जा और देहिक रूप सर्दी-गर्मी है। लेकिन वह कि जिसमें निखिल के प्रति प्रीति है जो श्रतुओं का आह्वान करता है, और प्राणिमात्र के प्रति जिसका हृदय करुणा से खुला पड़ा है, उसमें किसके प्रति भीति शेष रहे कि वस्त्र की आवश्यकता हो !

यह दिग्भ्ररता का आदर्श असामाजिक नहीं है, यद्यपि सामाजिकता से सीमित नहीं है। सामाजिक होकर मानव प्राणी समाप्त नहीं है। अपने जैसे दूसरे मानवों के साथ सम्पर्क

साधकर ही वह परिपूर्ण नहीं हो जाता। आगे भी उसकी सभावनाओं को विस्तार पावे जाना है। उमें वन शक्ति से, वायु से, पृष्ठी से, जल से, श्रतुर्घा से भी सामंजस्य प्राप्त करना है। उसमें लिए अगत मानव बाति तक परिमित नहीं है समूचे ब्रह्माण्ड के प्रति उसमें निमंत्रण है। ऐसा पीरुणमय पुष्ट्य गमात्र स पार, समष्टि में भिन्ने का प्रयासी दागना है, और, मानव को ही नहीं, निखिल जगत् को उसका आत्मदान प्राप्त होता है।

यह मुक्ति का आदर्श है। यह आदरा उपयोगिता की सीमा रेखाओं से आगे जाता है। यह लोकोपकार की की भाषा का उद्देश्य नहीं आता और आत्म कैवल्य की भाषा ही इसे छू पाती है। कारण, लोक तो ससीम है, आत्मा ही असीम है। जिसने आत्मा को पाया, उसे कुछ पाने से न रहा। जिसने अपने तक कुछ न रखा उसने सबको सब देकर सब का पालिया। यह आत्म साधना और मुक्ति का आदर्श अपने लोक-कल्याण का प्रकाशक है। नहीं तो उपयोगिता-समान दर्शन और उदनु सारी लोक प्रवृत्तियाँ सचाई में विशेष लोक भगल नहीं साध पाती। कारण, जहाँ वे लक्ष्य मानती हैं वह वहाँ नहीं उसके पार है ! और मानव समाज पर सत्य समाप्त नहीं, सत्य उससे बड़ा और व्यापक है।

जो दृष्टि सामाजिकता से सीमित

है वह दिगम्बरता के आदर्श को नहीं समझ सकती। लेकिन स्पष्ट है कि समाज की सत्ता इधर सृष्टि से स्वतंत्र नहीं है। विज्ञान बताना है कि जैसे सहस्रादियों के अंतराल में मानव को जन्म मिला और उसमें नाना चेशाओं ने विकास पाया। वह बताना है कि किस प्रकार मानव शेष सृष्टि से अलग नहीं उसका अंगीभूत ही है। मानव इतिहास और मानव सभ्यता महाएक की शेषप्रतिक्रिया से अलग होकर गम्यत्र नहीं होते। मानव चेष्टा विश्व-यापी विराट कर्म-चक्र का एक अंग ही है। उससे उन्मिच्छन्न होकर उसका मूल्य कुछ भी नहीं रह जाता।

यह समष्टि मूलक दृष्टि धर्म की है। उसका आरम्भ विदु आत्म-चेतना है। उस चेतना को परमात्म-चेतना में रूपांतरित करना है। व्यक्ति को समष्टि होना है। इस साधना के मध्य में ही सामाजिकता आ जाती है। व्यक्ति अपने को समष्टि में लीन करने की साधना में आधास उत्तरोत्तर सामाजिक होता जाता है। उसका अहंकार शान होता और उसकी सहृदयता प्रसार पानी जाती है। हिंसा से वह अहिंसा की ओर बढ़ता है। यहाँ तक कि अपने लिए वह कुछ भी नहीं रहता, कुछ नहीं रखता, और आत्यन्तिक अपरिग्रही बनता है।

आप अभाव की समस्या है।

समझा जाता है कि उत्पादन से यह दूर होगी। पर उत्पादन की कमी से यह पैदा नहीं हुई, वितरण की विषमता के कारण यह आई है। इससे उत्पादन में गुणानुगुणित करने से भी यह तब तक दूर नहीं होगी जब तक वितरण की व्यवस्था समीचीन नहीं होगी। आज तो तृष्णा का अन्त नहीं है। जो जितना पा जाय थोड़ा है। इससे कोरे उत्पादन बढ़ाने से इसके सिवा और क्या होगा कि जिनके पास बहुत है वह और बहुत हो जायगा और जिसके पास कम है, वह उससे भी कम रह जायगा। अरे, उद्योगीकरण से यही तो हो रहा है। करोड़पति अरबपति और दान दरिद्र बन रहा है। प्रचुरता और अभाव दोनों साथ साथ बढ़ रहे हैं।

ऐसे समय दिगम्बरता का ही आदर्श काम आ सकता है। वह अपरिग्रह धर्म का चरम उत्कर्ष है। आनन्दवक्ता बढ़ाकर हम समस्ताए भी बढ़ाते हैं। इस तरह बंधन बढ़ता है और मोक्ष हटता है। लम्बपति और करोड़पति, राजा और सम्राट क्या अपने लाल करोड़ और राज्य साम्राज्य के स्वामी होने के बहाने कैदी ही नहीं हैं? क्या वे आजाद हैं कि जैसे पक्षी आजाद होता है? क्या उनका वैभव जकड़ और बढ़प्यन बोझ भी नहीं है? और इधर सत है कि सब घर उसे समान हैं, सब मन अपने हैं और कोई

परिधि उसकी छात्मा पर बाधा बनने के लिए नहीं आ पाती है।

अपरिग्रह का यह आदेश जितना अनिवार्य है, उतना दुःख भी है। धन्य है वे कि जो उस तक पहुँचते हैं। ये कि जिससे लिए वह साधना नहीं अनायासता है। वे सचमुच मेरे लेखों में हैं कि दिगम्बरता जिनकी अहिंसा का अभिव्यक्ति है।

अमराका और जमना आदि देशों में नम्रता के प्रयोग हुए हैं। पाया गया है कि वैदिक और मानसिक स्वाध्य के लिये नम्रता गुणकारी है। लेकिन विचार का वह घरातल मेरे लिए अप्रस्तुत और अविचारणीय है। जिस दिगम्बरता का आदेश की बात ऊपर कहा, उसकी भूमिका एकदम भिन्न है। वह आध्यात्मिक है। वैश्व की दिगम्बरता में अहिंसाकी, हृदयकी, अपार करुणा की अभिव्यक्ति है। उसमें अभाव तो

है ही नहीं, एक परिपूर्णता है। उसमें शोक या आग्रह नहीं है, एक आन्तरिक अनिवार्यता है। आकाश को किस प्रतिरिक्त पत्रका आवश्यकता है। उसी तरह पृथ्वी, और चाँदनी को दिनको और रातको किस आवश्यकता है। वह उर्ध्व नियम नहीं निरूपित है। इसी तरह दिगम्बर के स्थिति का येश है। अतः उस दिगम्बर के पक्ष में साधारण तल के तर्कों का गति मुझे तनिक भी नहीं होतती है। मेरा मानना है कि विदेश की नम्रता प्रयोग विहित असामानिक प्रवृत्ति सूचक है। जबकि सन्धे योगी की दिगम्बरता का आदेश विश्ववर्तीन दिगम्बरता से हो प्राप्त होता है।

कहने की आवश्यकता नहीं आदेशों का मूल्य स्वतंत्र है। वर्तमान की श्रुति उसपर आरोप बनकर आ सकती।

—“पूर्वाद्य”

जिनके चरणों पर राष्ट्र चलता है

—सु. गी. तारादेवी 'नलिनी'

यद्यपि आज का भारतीय नारी समाज पिछली दश शताब्दियों से बहुत कुछ आगे बना है किन्तु अभी भी उसमें रुढ़िवा, अंध विश्वास, निरक्षरता और समुचितता ज्यों-का-त्यों है। अब तक नारों को चरकी, चूल्हा और सभ चल की 'च प्रयो' से निर्मुक्त कर उन विधायक दिशा में हम नहीं ले जाते तब तक उगुका उत्थान असंभव है। चकी चूल्हे से मोक्ष देने का तात्पर्य गार्हस्थिक कामों से उदासीन कर देना नहीं अपितु उसे— इन कामों से अनिरिक्त विश्व से घटना चक्र में देश विदेश से प्रगतिशील नारी समाज से अधिकाधिक परिचित कराना है जिससे वह न सिर्फ अपने जीवन को बरन समस्त परिवार को जिसका कि वह आधार शिला है, अधिकतम आल्लाह और मुल पटुचा सके।

अब हम भारतीय नारी-समाज की विश्व के दूसरे देशों का नारियों से तुलना करते हैं तब यह बात कि हम अभी उत्थान का दौर में एकदम बहुत पीछे हैं, स्पष्ट हो जाती है। हमारा देश सदियों से गुलाम रहा है और आज भी भले ही हम ऊपरीनौर से स्वतंत्र हो गये हों किन्तु मनोवृत्तियों की स्वतंत्रता हममें अभी तक पैदा नहीं हुई है। देश से अधिकांश देहान-रुद्धियों, अंध विश्वासों और अज्ञान से आज भा

उतने ही शिकार हैं जितने कि आजसे कई शताब्दियों पहले ये बल्कि हम तो यहा तक मानते हैं कि साक्षरता और ज्ञान के हास के साथ ही हमारे शिल्प का हास भी हुआ है नहीं तो शिल्प और बला भारतीय परिवार के अभिन्न थे। मुगल और ब्रिटिश काल को पार करती हुई बौद्ध और परवर्ती युग की नारी आज मानसिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से अपाहिज है। एक सबसे बड़ा और विप्लवात्मक जो कि हमारे समाज की जड़ों को कुतरता रहा है वह है उनका भाग्य भाग्य-वदाय माना जाना। हम जानते हैं कि आज 'भोग्य' और योग्य से भयंकर संपर्क है और अतत 'योग्य' की ही विजय होगी और नारी को— भोग्य-वृत्तनाओं से मोक्ष देकर हम उस अधिकाधिक योग्य बनाने में जुट जायेंगे किन्तु इसके पहले कि हम इसकाय काम को आरम्भ करें यह बहुत जरूरी है कि हम उस दुस्तित वातावरण को जिसमें कि आधुनिक नारी समाज पैदा हुआ है परिशुद्ध और सफ़्त कर दें ताकि हमारा अधिध्यय सरलभाव से पूरा हो सक।

निस्संदेह आधुनिक नारी समाज बाहरी रूप-सज्जा के प्रति जितना अधिक सावधान है अंतरंग के विकास

श्रीर विस्तार का मोह उसे इतना नहीं है। नहीं है सो कोई बात नहीं समाज का वातावरण ही कुछ ऐसा बना दिया गया है कि उसे इस परिवर्तन पर कुछ भी विचार जाने का अवकाश ही नहीं है। २. गार प्रसाधनों ही ने उसका दैनिक जर्मा को इतना अधिक व्यस्त कर लिया है कि उसे अन्य दूसरे कामों के करने का ही कोई चिन्ता ही है और न कोई आकांक्षा। यह निष्क्रियता और मृत्यु की ओर झुकाव लीची वाला भवितव्य कि वह जिस वातावरण में युगा में चला आ रहा है वही टाक और आवश्यक है नारी समाज को जड़ा को डीला कर रहा है। मत्र का दूसरा नाम ही मात है। इसलिये यह बहुत जरूरी है कि हम आज न नारी समाज से शुभ रही—आकांक्षा, वास्तव्य और प्रगतिशील तत्वों का ज्ञान, विज्ञान और अच्छे वातावरण के स्नेह से सिक्त करें और उसके प्रकाश का अखंड और अनुभूत बनायें।

आज का नारी समाज जीवन की जिन वास्तविकताओं से दृष्टता जा रहा है हमारा सबसे पहला कर्तव्य है कि हम ऐसा होने से रोक ताकि उसका मानसिक चरण जोकि युगों में चल रही सामाजिक विवशताओं की आधियों से और भी भयंकर रूप ग्रहण कर गया है, धम सके। इस सच्चाई से कि नारी में नवयुग का प्रवेश जरूरी है हम मुह नहीं मोड़ते किन्तु इस बात

को भी पूरी ताकत से कह देना चाहत है कि जबतक हम उस जमीन को उन आधारों को जिन पर आग की लौ प्रस्त नारी खड़ी हुई है बदल नहीं देते तबतक हम उसका ईप्सित उद्धार नहीं कर सकते।

सबसे पहला आन्दोलन जो नारी समाज के लिये आवश्यक है वह है उसके 'परिवार' का कायाकल्प उसके चहुँ मुखी वातावरण का परिष्कार। उक्त आन्दोलन की सफलता और क्रियावृत्ति के लिये हमें कुटुम्ब नारी के स्थान की पुनर्प्रतिष्ठा करना होगा। जैसाकि आग से युगों पहले उसे घर का व्यवस्थापक और मार्गदर्शक माना जाता था, उसी रूप की प्रतिष्ठा आग भी जरूरी है। अतः यह आवश्यक है कि हम 'नारी' को व्यथ के बंधनों से मुक्त कर उसे शिशु संरक्षण के लिये आधुनिक ज्ञान विज्ञान से परिचित और पुण्य की सदयोगिनो की तरह कला, विरव घटनाचक्र तथा विविध गतिवृत्तियों की जानकारी से युक्त करें। प्रत्येक सामाजिक का मह प्रयत्न होना चाहिये कि नारी में नैतिक सत्त्व के साथ ही विनायक प्रवृत्तिया का भी उत्थान हो जिससे वह कला और शिल्प के निमाणकारी कार्यों में लग सके।

सम्पूर्ण परिवार में बालकों का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये नहीं

नहें इनकार हो आगे चलकर पाणि
 हरिक मानागिक, राष्ट्रीय और अन्त-
 राष्ट्रीय बनते हैं। अन्त जबतक हम
 इन निर्माणों को और ध्यान नहीं देते
 तब तक निरन्तर मानिय भक्तिप को
 उत्तम बना पाना असंभव है। शायद
 ने इस बात का बिना किशो हिनक के
 स्वीकार किया है कि बच्चा जन्म से
 एकत्र परिष्कृत, सुशोण और स्वस्थ
 होता है किन्तु ममाग से अवाञ्छित
 वातावरण से उसकी अधिकांश शक्तियाँ
 कुण्ठित और अविकसित रह जाती हैं।
 इसलिए हम चाहिये कि उनको बिनके
 चरणों पर राष्ट्र आग बढ़ता है, उप-
 युक्त सरल और वातावरण दें जिससे
 कि अनागत अधिकाधिक उत्तम और

आशाप्रद बन सके।

यह गर्मान्य है कि परिवार ही
 वह विश्व विद्यालय है जहाँ आगामी
 जीवन का आधार गिनाए रखी जाती
 है और यदि यह शिला-वाग विधि
 यथाविधि मग्न नहीं हुई तो सम्बन्धित
 पारिवारिक का अनागत अनुभव
 और अधकारण्य हो जाता है। हम
 लिये यह बहुत जरूरी है कि हम छोटे
 छोटे नागरिकों तथा उनके भावी
 सरलकों (नारियों) के जीवन को काफी
 सन्तुष्ट, साधन-सम्पन्न और पूरा बनायें।
 बच्चों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षित
 बनायें और नारी को सादगी से पूरा
 सुखी परिवार का सुधा और राष्ट्र का
 विधाना बनने की प्रेरणा दें।



श्रमण-संस्कृति

प्राप्ति-स्थान

॥॥

दुलीचन्द्र जैन, न्यूज पेपर एजेंट

२६, खजूरी बाजार, इंदौर

हिन्दी, उर्दू, इंग्लिश, मराठा और गुजराती दैनिक, साप्ताहिक एवं
 मासिक पत्रों के मिलने का एकमात्र स्थान।

सम्पादकीय—

ऐस वक्त जबकि सारा ससार भ्रु ख्वाब भड़ियों की तर एक दूसरे की भयतने की दुश्चिन्ता से घिरा हुआ है और युद्ध की दिग्गजाया सभा वनाओं ने तमाम समस्याओं को निपट पचीदा बना दिया है, सङ्कति, समपण और स्वाध त्याग विशेषण दिक् + श्रमचरी (सयया अहम् त्याग) वाली सङ्कति का बाते करना विद्रूप विडम्बना है। निश्चय ही आज धरा के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक परिग्रहवाद और हिंसा का भयकर कुचक्र अपना सम्पूर्ण गति में प्रवहमान है। एक मनु पुत्र दूसरे मनु पुत्र की रक्त शिराओं के उष्ण रक्त को भूये भेड़िये की तरह चूस जाना चाहता है। ऐसी तृति शय विभाषिका में वात्सल्य, स्नेह, अपरिग्रह, सबस्व समपण और मनन चिन्तन का प्रसंग जगलार मुल्कों के एलानों और कुङ्कत्यों की निगाह में अक्षम्य अपराध हो सकता है किन्तु कोरिया, मिश्र, ट्वनी शिया, हिन्चान आदि के नरमेवों का तकाजा है कि हम मासूम जिन्दगियों के खिलाफ रची जा रहा बेरहम मनहूस साजिशों का 'शांति और आध्यात्मिक परम्पराओं' द्वारा मुकाबला करें। इन्हीं रक्त-स्नात परिस्थितियों से स कुछ ऐसे मनस्वी और दश जोकि मनस् के सम्पूर्ण ख गोल और भू-गोल की अवि कृत जानकारी रचते हैं हम लेते हैं

और धरा की तरह मल-मूत्र का खाद खाकर सोना उगलते हैं, अपने पय ग्रह सहोदरों को अनुभूत इ गिनों द्वारा राहत का मार्ग बताते हैं। धर्म की बोली में हम जिन्हें तार्थङ्कर (तीर्थ निर्माता) या अवतार कहकर पुकारते हैं सब की बोला में उन्हें ही हम 'युगचेता मानव' कहकर पुकारते हैं। पुराणों की आलङ्कारिक और अतिशयोक्ति पूर भाषा से बचते हुए जब हम उसके मर्म तक पहुँचते हैं तब हम सहज भाव से कह सकते हैं कि औसतन मनुष्य ही निरन्तर विकास और संस्कार द्वारा महामानव के स्तर तक पहुँच जाता है। एने ही महापुरुषों के चरणों पर सङ्कति रश्मि, अणु, और वाष्प से निर्मुक्त होकर आग बढ़ती है। यह सवमान्य है कि सङ्कति राज नीति अथनीति, समाज-नीति, कूट नीति, इतिहास पुराण, मनोविज्ञान खगोल, भूगोल, भाषा सभी की तलवर्ती खोतखिना है। उसे हम ऊपरातीर पर अनुवश और वातावरण एस दो खडों में विभक्त कर सकते हैं। इनमें स अनुवश एक ऐसा तत्व है जिसमें पुरखों की 'इस्टिकन्स' या आदम प्रवृत्तियाँ ज्यों की त्यों उतरती चली आई हैं। आयुष, उदाग, वाष्प, अणु और रश्मि के विविध स्तरों से गुजरती हुई मानव स तति आदिम प्रवृत्तियों की किस हद तक परिष्कृत करती रही है

इसी का लेना जोगा ससृति है। मनो वैज्ञानिकों ने अनुवश का सम्बन्ध सीवे रक्त से माना है। उनका विश्वास है कि सासृतिक तत्वों का सरक्षण जितना अधिक "क्रोमोसम्स" के जोड़ों में होता है उतना अधिक वातावरण में नहीं। वातावरण का सम्बन्ध अक्सर सम्यता से जोड़ा जाता है। मनस् वेत्ताओं की मान्यता है कि मनुष्य की अधिकांश निर्मिति "जनक-जननी" से हस्तांतरित "क्रोमोसम्स" में होता है। उसका बनना बिगड़ना "क्रोमोसम्स" के जोड़ों में ही निहित है। यों मान लिया जाना चाहिए कि अनुवश संसृति को बनाता है और वातावरण सम्यता को—किंतु कही गई बातको खडश नहीं अन्वडश मानना चाहिए क्योंकि दोनों एक दूसरे में इतने अधिक जुड़े हुए हैं कि हम दोनों की स्थितियाँ अलग-अलग करके नहीं देख सकते। दोनों को एक दूसरे के गडोस र्भ रखकर देखना पड़ेगा। अनुवश एक अविरल प्रवाह है जो आया नारी और आदि नर में उसकी उप सन्ततियों में क्रमश विभक्त होता हुआ विरनीण होगया है इसलिये यह बहुत जरूरी है कि हम इस प्रवाह के उद्गम और विकास को मनोयोगपूर्वक समझें। जब तक हम यह नहीं मानलेते कि संसृति का विकास होता है उत्पाद, व्यय, प्रीय के उल्ल पर—तब तक हम संसृति के आतवर्ती अथ तक नहीं पहुँच सकते। संसृति जब वातावरण के

सस्पर्श से परिणमन करती है तब इने हम संसृति का 'उत्पाद' कहते हैं। वह नवीन प्रवाहों से मिलकर अपने परवर्ती अस्तित्व का नये अस्तित्व क रूप में व्यय" करती है तब इने हम सैद्धांतिक शब्दावली में संसृति का व्यय कहते हैं। इस उद्गम और व्यय के अतिरिक्त संसृति की एक और स्थिति है जिसे हम 'संसृति का स्थैय' कहते हैं। यहाँ "संसृति का धारा" नई धाराओं से मिलकर भी अपनी बुनियादा धानुओं को कायम रखता है इसे हम संसृति की "प्रीय" स्थिति कहकर पुकार सकते हैं। इस तरह संसृति साधारण 'व्यु' का तरह उत्पन्न, विनष्ट और फिर भी द्रव्यायिक दृष्टि से अविनष्ट रहनी है। इस तरह यदि हम ससार की इस सूख्खार स्थिति को—चिसम कि मनुष्य का आंतरिक हा हा कार और वैपम्य पूरी तरह स्पष्ट हुआ है—बदलना चाहते हैं तो हम संसृति का सहारा लेना होगा। हमारा यह सांस्कृतिक दावा है कि तदनक विश्व की खनरनाक और विस्फोटक स्थिति पर अन्तराष्ट्रीय सांस्कृतिक स्तर पर विचार नहीं किया जाता तबतक विष्वसक तत्वों का घटाना कठिन है अत विश्व की तमाम सन्तत और दस आत्माओं से हमारा विनम्र किंतु कठोर निवेदन है कि वे अपने सांस्कृतिक स्तर को दृढ करें और अपने रक्त म



दिन की तरह साफ कर दें कि शक्ति में वह अपरिमेय शक्ति है जो किसी भी हिमावादी मानत को शिखरत देने का सामर्थ्य रखती है। हमें चाहिये कि हम अपने में इस सामर्थ्य को व्यवहार और गथाथ में सामन्त्रस्य का स्थिति कायम कर विकसित कर और युगों को छाती चौरती चत्रों आरही इस उन्नत परम्परा को अनुभवत होने से रोकें।

प्रस्तुत अत्र—

‘अमण सत्त्वति’ का दूसरा अत्र अपने पाठकों को देने कहा एक और हमें अनुल रूप है वही इस बात का अर्थ भी है कि हम इस अत्र को अपने अतिराम प्रयत्नों के बावजूद भी निश्चित समय पर निर्धारित रूप सजा के साथ प्रकाशित नहीं कर सके। फिर भी हमें इस बात से पूरा सतोष है कि अत्र में सकलित सामग्री नितांत उपयोगी और अपने ध्येय को पूरा करने वाली है। ‘अमण सत्त्वति’ के सम्पादन में हमारा पूरे प्रयत्न रह है कि पाठक को ‘अमण’ और ‘सत्त्वति’ के शपशार्थों से परिचित कराया जाय और ‘अमण-युग’ से ‘विनोबा युग’ तक के तमाम परिवर्तनों की एक भाका दी जाय। जैनेन्द्रजी का ‘हिमन्तर’ निद्रध हमारे इस ध्येय का अष्ट पूति करता है।

‘मिलिन्द्र प्रश्न’ से उद्धृत अर्थों में ‘अमण’ की जो व्याख्या हुई है वह

पठनीय है। यों मिलिन्द्र प्रश्न स्वाध्याय और मनन की चीज है। प्रत्यक्ष भावक को इस अपने दैनिक स्वाध्याय की वस्तु बनाना चाहिये महास्थविर तागसेन से बकिट्टया के राजा मिनाण्डर ने ठीक वैसा ही प्रश्न किया है जैसे राजा ‘पेशिक’ ने गणधर गौतम से किया थे। ‘नाम विज्ञानि मान है’ जानक कथा के आधार पर लिखित एक उत्कृष्ट कहानी है जिसमें लिवास अजयतुमार जैन का है और आत्मा बोधिसत्व की ! उसके अनिर्दिष्ट भी वारेन्द्र जैन का हम ना स्वायत्त विचरत है’ कविता, स्व शाह का ‘महावीर ने कहा’, श्री शिलरचन्द जैन की पौराणिक कहाना ने भी अत्र का स्रोतस्विनी को बहुत दुल्ल प्रवाह दिया है। यद्यपि हम इस बात से इन्कार नहीं करते की अत्र का अदाश कलेवर अमौलिक है, ऐसा जा कि कई पुस्तकों या जैन मासिकों में प्रकाशित हो चुका है, किन्तु इसका वावच भी उद्धृत अत्र इस श्रेणी के है कि उन का प्रत्यक्ष पुनरावृत्ति नित्य-नवान दृष्टि का दत्ता है। महात्मा भगवानदीन का कहानानुमा दार्शनिक निबन्ध इसी श्रेणी का है। हम हादिक विश्वास है कि भविष्य में भी हम अपने नरुण और शतकश साहित्यिकों से इसी तरह सहयोग मिलता रहेगा जिससे हम आगामी अर्थों का पूरी सफलता के साथ प्रकाशित कर सकेंगे।

श्री महावीर जयन्ती उत्सव-समिति इन्दौर

आय व्यय विवरण पत्रक,

वीर सत्र २४७६

२००१-१)॥ श्री मिलक बाकी	४८॥॥)	श्री प्रभात फेरी लव
४००) श्री दिगम्बर जैन कपडा कमेटो मुहण पड कपडा माफेट इ दोर	२८६॥=)॥ श्री सभा लव, सबाइ	छुपाई, प्रवार, पीस्टर, लाइट, रडिया इत्यादि
२००) श्री श्वेतांबर जैन मूर्ति पुस्तक मुहण पड कपडा माफेट इ दोर	३६२॥)	प्रवास व महामानों की
१००) श्री श्वेतांबर जैन स्थानक वामी मुहण पड कपडा माफेट इ दोर	२५॥)	मोजन व्यवस्था लव
	७॥॥)	पोस्टर, तार टुक-वान लव
	८०३-)	मजदूरी पून व गेरची लव
६००१-१)॥	१६१॥=)	श्री मिलक बाकी

आय व्यय विवरण पत्रक, वीर सत्र २४७७

१६१॥=)	श्री मिलक बाकी	१०=)	प्रभात फेरी लव
१००)	श्री दिगम्बर जैन कपडा कमेटो मुहण पड कपडा माफेट इ दोर	२६०)	सभा लव छुपाई, प्रवार पोस्टर लाइट रेडियो ।
२००)	श्री श्वेतांबर जैन मूर्ति पुस्तक मुहण पड कपडा माफेट इ दोर	५२॥)	प्रवास-लव
१००)	श्री श्वेतांबर जैन स्थानक वामी मुहण पड कपडा माफेट इ दोर	४१=)	तार व टलीन न पोस्टर गेरची लव मजदूरी पून व छान गेरची
		२००)	आद गहरति में लव
		३६५॥)	
		३६८॥=)	श्री मिलक बाकी

८६१॥=)

तीर्थकर महावीर के पुनीत जन्म पर्व पर
हम आपको अमिनन्दन करते हैं
दैनिक जीवन के आवश्यक वस्तुओं के लिये

एक विद्यस्त स्था—

दि हुकुमचन्द मिल्स लिमिटेड
इन्दौर
को याद रखिये

हमारी विशेषताएँ—

● पक्के रंग की चोल

● पक्के रंग की साड़ियाँ और पातलें

● पक्के रंग की सुन्दर डिम्भाइनो, की छीटे

● शर्टिंग, कोटिंग, टावेलम, मलमल, हरक आदि

मास्तिय मिलों में उत्कृष्ट बुनाई, मजबूती और

आकर्षक डिम्भाइनो के लिय प्रख्यात

मेनेजिंग एजेन्ट्स—

सर हुकुमचन्द एंड मन्नालाल क इन्दौर

मंगलमय, महावीर के पुनीत जन्म की
स्मरणा की बेला में

सुपरफाइन कपड़े के लिये मध्यभारत का
— एक मात्र स्थान —

जिसे आप सदैव याद रख सकते हैं

दि हीरा मिल्स लि०

उज्जैन

द्वारा निर्मित

- ★ सुपर फाइन घोंती जोड़े
- ★ काम्बड सूत की मलमल
- ★ उंची जात की जगन्नाथी, हरक
- ★ पक्के रंग की साड़ियाँ, पातल
- ★ हरक, चादर, लुगड़े

और

नित्य प्रति उपयोग में आने वाले वस्त्रों की प्राप्ति के लिये

मैनेजिंग एजेन्ट्स

सर सरूपचंद हुकमचंद एंड
कम्पनी, इंदौर

टेलीफोन नं १०६

तार का पता—NAND

स्वदेश की उन्नति काजिये

और

गृह उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन दीजिये

दी नन्दलाल भंडारी मिल्स

लिमिटेड इन्दौर

१९२२ में रजिस्टर्ड

हमारी विशेषताएँ

सर्व प्रकार के कामों के लिये सर्व साधारण की रुचि का सस्ता एवं उत्तम, निरय के व्यवहार योग्य, नये प्रकार का ठिकाऊ व्यवहार कर्तों की आवश्यकता पूर्ति के लिये

सब प्रकार का कपड़ा

कोरिगज, टिक्न्स, लट्टा, प्लेन और फ-सी शर्टिंग, टावेल्स और नेपकिंस, धोतियाँ और साड़ियाँ, दो सूती और मजरी, ब्लाकेट्स और दरियाँ

शिल्प चातुर्य और परिश्रम इसकी सफलता की कुजीहें

एजेंट्स

दि नन्दलाल भंडारी एराड संस

हेड आफिस
मिल्स बिल्डिंग

कपड़ा दूकान
८१ एम टी बलाय मार्केट

[सेंट्रल इण्डिया पैठघरटाइजर्स इंदौर]

स्थापित १९१४

तार का पता—विनोद, उज्जैन

विनोद मिल्स लिमिटेड, उज्जैन (दीपचन्द मिल्स सहित)

श्रीमत् सिधिया नरेश, राजप्रमुख मध्यभारत सघ द्वारा सरक्षित
हमारी कई विशेषताएं

१ कपड़ा—उपयोगी, सस्ता, टिकाऊ, सभी प्रकार का। जिसे लोग
बड़े चाव से खरीदकर उपयोग में लाते हैं। एक बार अवश्य खात्री करें।

२ एबसाइबेंट फाइन घुन—खात्री में भारत सरकार द्वारा
पसंद। मध्यभारत, राजपूताना आदि प्रान्तों के अस्पतालों में काम में
लिया जाता है।

३ लिट—इस हमने अभी चालू किया है। बम्बई की सर्निकल
ट्रेडिंग कम्पनी ने पसंद करके अभी ज्यादा तादाद में खरीदा है।

आर्टिफीशियल सिल्क क्लाय— तरह तरह के फेसी और
रंग निरगे कपड़े, मलमल, बड़िया जारजेट वायल व साटन वगैरह
तैयार किये जाते हैं।

५ नरेट्र केमिकल वर्क्स—

इसमें वेजाटेबल टेलो, साफ्ट सोप, टरकी रेड आइल स्पामिंग व ग्लेज
बेस्ट विनोटेक्स किनाइल आदि बनते हैं जो मिलों में काम आते हैं।
मध्यभारत में एकही फेक्ट्री है। अवश्य इसके माल का उपयोग करें।

फैलाश सोप फेक्ट्री— इसमें बड़िया क्रिम का साबुन नहाने व
कपड़ा धोने के काम का तैयार किया जाता है, जो कीमत में सस्ता है।

७ भूपेटर आयन एरल मेटल वर्क्स— ८ नरेट्र आइल मिल्स
— ५ दोनों कारखाने भी खोलें हैं।

उपरोक्त वस्तुओं को अवश्य एकबार
खरीद कर परीक्षा करें

दि विनोद मिल्स लि० उज्जैन

मेनेजिंग एजेंट्स— मेसर्स विनोदीराम बालचंद्र बैंकस

अहिंसा का एक ठाला आचरण
भी सैकड़ों मन कोरी कितारी।
और सैद्धान्तिक अहिंसा
से कहीं अधिक
श्रेयस्कर है !



दि इन्दोर मालवा युनाइटेड
मिल्स लि, इन्दोर
